श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल
के
सभ्यगण और मुखपत्र ।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशी से हिन्दी और अंग्रेज़ी दो भाषा के दो मासिकपत्र प्रकाशित होते हैं श्रीमहामण्डल के अन्यान्य भाषा के मुखपत्र श्रीमहामण्डल के प्रान्तीय कार्य्यालयों से प्रकाशित होते हैं; यथा:— कलकत्ते के कार्य्यालय से बङ्गला भाषा का मुखपत्र, फ़ीरोजपुर कार्य्यालय से उर्दू भाषा का मुखपत्र इत्यादि ।

श्रीमहामण्डल के पांच श्रेणी के सभ्य होते हैं, यथा:—स्वाधीन नरपति और प्रधान धर्म्माचार्य्यगण संरक्षक होते हैं । भारतवर्ष के सब प्रान्तों के बड़े बड़े जमींदार सेठ साहूकार आदि सामाजिक नेतागण उस उस प्रान्त के चुनाव के द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं । प्रत्येक प्रान्त के अध्यापक ब्राह्मणगण में से उस उस प्रान्तीय मण्डल द्वारा चुने जाकर धर्म्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं । भारतवर्ष के सब प्रान्तों से पांच प्रकार के सहायक सभ्य लिये जाते हैं; विद्यासम्बन्धीय सहायक सभ्य, धर्म्मकार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल, प्रान्तीय मण्डल और शाखासभाओं को धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और साधु संन्यासी सहायक सभ्य । और साधारण सभ्य हिन्दूमात्र ही जो चाहें होसके हैं । हिन्दूकुलकामिनीगण केवल सहायक सभ्य और साधारण सभ्य होसक्ती हैं ।

इन सब प्रकार के सभ्यों और श्रीमहामण्डल के प्रान्तीय मण्डल, शाखासभा और संयुक्त सभाओं को श्रीमहामण्डल का हिन्दी अंग्रेजी मुखपत्र विना मूल्य दिया जाता है । नियमित वार्षिक चन्दा देने पर सकल हिन्दू नर नारी साधारण सभ्य होसके हैं और उनको यह पत्र विना मूल्य मिलता है । सभ्य होने के लिये निम्नलिखित पते पर पत्राचार करें ।

प्रधानाध्यक्ष—
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
महामण्डलभवन, जगत्गंज, बनारस.

श्रीविश्वनाथोजयति ।

मन्त्रयोगसंहिता

तन्त्र

भाषानुवाद सहित ।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधानकार्य्यालय
से श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दान-
भण्डार द्वारा प्रकाशित ।

काशी ।

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के [illegible]
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा ।

सन् १९१५ ई०

प्रथम वार १०००]　　　[मूल्य एक रुपया १)

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल के विषय में यदि किसी को कुछ जानना हो तो निम्नलिखित पते से पत्राचार करे :—

प्रधानाध्यक्ष
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल
प्रधानकार्य्यालय
जगतगंज
बनारस ।

सूचना।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल के सञ्चालकों का यह सिद्धान्त है कि जबतक इस समय के उपयोगी आवश्यकीय ग्रन्थरत्नसमूह शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित करके हिन्दी भाषा की पुष्टि न कीजाय, जबतक हमारे आध्यात्मिक उन्नतिकारी बहुमूल्य ग्रन्थरत्नसमूह जो संस्कृत भाषा में हैं उनको विशुद्ध हिन्दी में अनुवादित करके प्रचार न कियाजाय और जबतक आजकल के देश काल पात्र उपयोगी और उपयुक्त रीति पर धर्म्मप्रचार और धर्म्मशिक्षा उपयोगी यथायोग्य ग्रन्थ अपनी मातृभाषा हिन्दी में प्रणीत होकर प्रकाशित न हो; तबतक हिन्दुजाति का यथार्थ रूप से कल्याण होना असम्भव है। इस कारण विशेष पुरुषार्थ के साथ श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल के आश्रय से एक स्वतंत्र कार्य्यविभाग द्वारा अनेक ग्रन्थरत्न प्रकाशित होरहे हैं। उसी कार्य्यविभाग द्वारा यह ग्रन्थरत्न प्रकाशित हुआ है।

सनातनधर्म्म की पुष्टि, सनातनधर्म्म के अधिकरूपेण पुनः प्रचार, सनातनधर्म्म में से साम्प्रदायिक विरोध का नाश और अन्यधर्म्मों के आक्रमणों से रक्षार्थ सनातनधर्म्म की भित्ति दृढ़ करना आदि उद्देश्यों की पूर्त्ति तभी होसक्ती है जब सनातनधर्म्म के दार्शनिक ग्रन्थों का विशुद्ध भाषानुवाद प्रकाशित हो और साथही साथ उपासना और योगशास्त्रसम्बन्धीय ग्रन्थ भाषानुवादसहित प्रकाशित हों। सनातनधर्म्म में जितने प्रकार की साधनप्रणाली हैं उनको पूज्यपाद महर्षियों ने चारभाग में विभक्त किया है। उनके नाम ये हैं, यथा-मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। इन

योग सिद्धान्तों के अलग अलग संहिता-ग्रन्थसमूह जब आद्योपान्त पढ़े जायँगे तो साम्प्रदायिक विरोध की सम्भावना ही नहीं रहेगी। इस कारण मन्त्रयोगसंहिता, हठयोगसंहिता, लययोगसंहिता और राजयोगसंहिता इन चार संहिताग्रन्थों में से प्रथम ग्रन्थ यह प्रकाशित हुआ; शेष क्रमशः प्रकाशित होंगे। इन चारों संहिताग्रन्थों के द्वारा सनातनधर्म्म के सब सम्प्रदायही कल्याण प्राप्त नहीं कर सकेंगे किन्तु पृथिवी के सब धर्म्ममार्ग भी लाभवान् हो सकेंगे।

इस ग्रन्थ का स्वत्वाधिकार श्री १०८ पूज्यपाद ग्रन्थकर्त्ता की आज्ञानुसार श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभण्डार को अर्पित हुआ।

अक्षयतृतीया
संवत् १९७२ विक्रमीय

विवेकानन्द।

मन्त्रयोगसंहिता की विषय सूची ।

इति मन्त्रयोगसंहिताविषयसूची

समाप्ता ।

—ॐ—

प्रस्तावना ।

मनुष्यसमाज में जिस प्रकार शिल्पोन्नति से उसके बहिर्जगत् की उन्नति जानी जाती है उसी प्रकार दर्शनशास्त्र की उन्नति से उसके अन्तर्जगत् की उन्नति समझी जाती है । जिस मनुष्यसमाज ने जब जितना शिल्पोन्नति साधन किया है वह मनुष्यसमाज उस समय उतनेही परिमाण से बहिर्जगत् सम्बन्धीय उन्नति के पथ में अग्रसर हुआ है । शिल्प की उन्नति के साथही साथ मनुष्य समाज में पदार्थविज्ञान (सायेन्स) की उन्नति हुआ करती है । पदार्थविज्ञान कभी भी सर्वोच्चस्थान अधिकार नहीं करता है तथापि उसकी उन्नति के परिमाण के अनुसारही मनुष्यसमाज में बहिर्जगत् की उन्नति का परिमाण अनुमित हुआ करता है ।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतीन्द्रिय अन्तर्राज्य के अर्थ दर्शनशास्त्रही एकमात्र अवलम्बन है । स्थूलराज्य से अतीत अत्यन्त वैचित्र्यपूर्ण सूक्ष्मराज्यरूप अनन्त पारावार के लिये दर्शनशास्त्रही ध्रुवतारा स्वरूप है । सूक्ष्मराज्य में प्रवेश करने की इच्छा करनेवाला साधक केवल दर्शनशास्त्रों के साहाय्य से ही अन्तर्राज्य (सूक्ष्मराज्य) में प्रवेश करने में समर्थ होता है । जिस प्रकार स्थूलनेत्रविहीन व्यक्ति स्थूलजगत् का कुछ भी नहीं देखसक्ता, उसी प्रकार दर्शनशास्त्र को न जाननेवाला व्यक्ति भी सूक्ष्मजगत् के विषयों को कुछ भी नहीं समझ सक्ता । अतएव इन सब बातों से यह जानना चाहिये कि जो शास्त्र सूक्ष्मजगत् का वास्तविक तत्त्व समझा देवे उसीको दर्शनशास्त्र कहते हैं ।

पृथिवी का इतिहास पढ़ने से जाना गया है कि जब जो मनुष्यजाति आध्यात्मिक जगत् में अग्रसर हुई है तबही उनमें दर्शनशास्त्र की आलोचना प्रारम्भ हुई है । वैदिक धर्मावलम्बी मनुष्यसमाज में जिस प्रकार दर्शनशास्त्रों की उन्नति हुई है, पृथिवी की अन्य किसी जाति में भी उस प्रकार उन्नति नहीं हुई है । सनातनधर्मावलम्बी मुनिगण ने योगसाधन के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि प्राप्त करके तत्पश्चात् अन्तर्जगत् में प्रवेश करने की चेष्टा की थी । पूज्यपाद महर्षिगण ने पहिले तप और योग की सहायता से अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके तब जगत् के कल्याणार्थ सूत्र बनाकर पृथक् पृथक् दर्शनशास्त्र प्रकाशित किये थे । उन्होंने पहिले अन्तर्राज्य में आधिपत्य स्थापन करके पीछे जिज्ञासुगण के अर्थ

उसके द्वार को उघाड़ने के अभिप्राय से वैदिक दर्शनशास्त्र प्रणयन किये हैं। परन्तु पृथिवी की अन्यान्य शिक्षित जातियों में उस प्रकार होने की सम्भावना न होने से उन्होंने दूर से अन्तर्राज्य का यत्किञ्चित् आभास पाकर उस विषय के वास्तविक सत्य को अन्वेषण करने की चेष्टा की है। पृथिवी की सकल शिक्षित जातियें जिस प्रकार बहिर्जगत् का आश्रय ग्रहण करके सूक्ष्मजगत् में प्रवेश किया करती हैं, पूज्यपाद महर्षिगण ने वैसा न करके प्रथम अन्तर्जगत् का विस्तारित ज्ञान प्राप्त करके तब सर्वसाधारण के कल्याणार्थ उसको बहिर्जगत् में प्रकाशित करने का यत्न किया था। इसी कारण वैदिक दर्शनशास्त्र सात अङ्गों में विभक्त होकर सम्पूर्ण हुए हैं। परन्तु पृथिवी की अन्यान्य शिक्षित जातियों के दर्शनशास्त्र वैसे न होकर वैचित्र्यमय और असम्पूर्ण रहे हैं।

सृष्टितत्त्व की पर्य्यालोचना करने से सहजही जाना जासक्ता है कि त्रिगुणमयी प्रकृति के राज्य में सर्वत्रही तीन तीन विभाग विद्यमान हैं, यथाः—वात पित्त और कफरूपिणी शरीररक्षा की त्रिविधशक्ति, मनुष्य की त्रिविध प्रकृति, त्रिविध कर्म इत्यादि। इसी प्रकार सात रीति के भावों के अवलम्बन से सृष्टिराज्य के सप्तधातु, सप्तवर्ण, सप्तदिवस, सप्तऊर्द्धलोक, सप्तअधोलोक, सप्तरत्न, सप्त अज्ञानभूमि, सप्तज्ञानभूमि, इत्यादि सप्तविध विभाग सकल स्थानों में ही परिलक्षित होते हैं। उक्तरीति से सप्तज्ञानभूमियों को अतिक्रम करके क्रमशः परमपद लाभ करने के अर्थ जिस वैदिक दर्शन विज्ञान का आविर्भाव हुआ है वह भी इन सप्त ज्ञानभूमियों के अनुसार ही सप्तभागों में विभक्त है। इन सात दर्शनों में से दो पदार्थवाददर्शन, दो सांख्यप्रवचन दर्शन, और तीन मीमांसा दर्शन हैं। आधुनिक पुस्तकों में जो षड्दर्शन नाम देखा जाता है वह केवल जैन और बौद्धों के अनुकरण से प्रचारित हुआ है, क्योंकि उनके दर्शनशास्त्र षड्दर्शन नाम से अभिहित होते थे इसी से नास्तिकदर्शन के अनुकरण से वैदिक षड्दर्शन नाम प्रचारित हुआ था। किसी भी आर्षग्रन्थ में षड्दर्शन शब्द नहीं देखने में आता है। विशेषतः बहुत शताब्दियों से मीमांसादर्शन के सब सिद्धान्त ग्रन्थ लुप्त होजाने से मध्यमीमांसा दर्शन का एक भी सिद्धान्तग्रन्थ मिलता नहीं था। इन सब कारणों से ही अज्ञानमूलक षड्दर्शन शब्द हमारे साहित्य में क्रमशः प्रचलित हो पड़ा है। वास्तव में न्याय और वैशेषिक ये दोनों पदार्थवाद के दर्शन, योग और सांख्य ये दोनों सांख्य प्रवचन दर्शन और वेदोक्त कर्म उपासना एवं ज्ञान इन काण्डत्रयों के अनुसार कर्ममीमांसा, दैवीमीमांसा (भक्तिमीमांसा) तथा ब्रह्ममीमांसा ये तीनों मीमांसादर्शन, इस प्रकार सप्त दर्शन स्वतःसिद्ध हैं।

दर्शन ग्रन्थों के अभाव और दार्शनिक शिक्षा के लोप होजाने से सनातन धर्म्म की वर्तमान दुर्गति हुई है। आजकल स्वधर्म्म में अविश्वास, परधर्म्म ग्रहण में इच्छा, सदाचारवर्जन, पूज्यपाद महर्षिगण के आदेशों का उपहास, वेद और पुराणों पर अश्रद्धा, साम्प्रदायिक विरोध, अलौकिक अन्तर्राज्य पर अविश्वास, परलोक के भय का राहित्य, देवदेवी और ऋषि पितरादि के अस्तित्व में सन्देह, कर्म्मकाण्ड पर अनास्था, साधु और ब्राह्मणों पर अभक्ति, वर्णाश्रमधर्म्म की उपेक्षा, जगत् को पवित्र करनेवाले आर्य्य नारियों के धर्म्म के मूलोच्छेद में प्रवृत्ति, जप ध्यानादि साधनमार्ग पर अरुचि इत्यादि आर्य्यत्व नाशकारी जो प्रबलदोष उत्पन्न हुए हैं यह केवल वैदिकदर्शनों की शिक्षा के अभाव से ही हुए हैं इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है।

न्यायदर्शन की शिक्षा इस समय सम्पूर्णरूप से नहीं होती है। पहिले की तरह इस समय प्राचीन न्याय की वास्तविक शिक्षापद्धति नहीं है, यह कहने से भी अत्युक्ति नहीं होगी। इस समय प्राचीन न्याय के स्थान में नवीन न्याय का ही अधिक प्रचार देखाजाता है।

वैशेषिकदर्शन के उपयोगी आर्ष भाष्य के अभाव होने से उसकी चर्चा एक प्रकार उठही गई है ऐसा कहने से भी चल सक्ता है।

योग दर्शन पहिले तो कठिन शास्त्र है, और उसके साथ अन्तर्जगत् का अतिघनिष्ठ सम्बन्ध होने से उसकी यथार्थरूप से अध्ययन और अध्यापन की प्रथा एकबारही उठगई है। क्योंकि योगदर्शन के आचार्य्य को योगी होना आवश्यक है। किन्तु इस समय उस प्रकार के वास्तविक योगी के अभाव होने से ही इस दर्शन की यथार्थ शिक्षा का अभाव होपड़ा है।

सांख्यदर्शन की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। इस समय कोई उसको आधुनिक दर्शन कहते हैं, कोई उसको प्रक्षिप्त विषयपूर्ण कहकर घृणा करते हैं, और कोई कोई नास्तिक दर्शन कहकर उसका परिचय देते हैं। कई हज़ार वर्षों से उसका आर्ष भाष्य न मिलने से और आजकल जो उसका भाष्य मिलता है वह जैनधर्म्मावलम्बी आचार्य्य का बनाया हुआ होने से ही इस प्रकार की विशृङ्खलता का कारण उपस्थित हुआ है। विज्ञानभिक्षु जैनाचार्य्य वा बौद्धाचार्य्य थे इसमें अब कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि उन्होंने जिस भाव से सांख्यदर्शन को अपने भाष्य द्वारा प्रतिपादन करने की चेष्टा की है उससे स्पष्टही ज्ञात होता

है कि वे सनातन धर्म्मावलम्बी नहीं थे। उन्होंने अप्रासङ्गिक रीति से वैदिकी हिंसा की निन्दा, लौकिक और अलौकिक प्रत्यक्ष विज्ञान को परिवर्तन करते हुए ईश्वर की सिद्धि के सम्बन्ध में अनुमेत सिद्धान्त का प्रतिपादन, शास्त्रोक्त देवतादि का खण्डन आदि जो किया है उसको पढ़ने सेही निरपेक्ष दार्शनिक व्यक्तिमात्र ही एक वाक्य से स्वीकार करेंगे कि वे सनातनधर्म्म के विरोधी अन्य किसी सम्प्रदाय के आचार्य्य थे। अबतक सांख्यदर्शन पर जो सब टीकाएँ प्रकाशित हुई हैं उनके बनानेवालों ने जैनाचार्य्य विज्ञानभिक्षु के मत का अनुसरण करके ही वे सब बनाई हैं।

दर्शनशास्त्र का वास्तविक प्रचार करना होगा तो प्राचीन न्याय दर्शन का अधिक प्रचार, और ऋषियों के अभिप्रायानुसार भाष्य के साथ वैशेषिक दर्शन का प्रचार विशेष आवश्यक है। श्रीभगवान् व्यासकृत भाष्य को अवलम्बन करके योगी महापुरुषगण के द्वारा प्रणीत विस्तृत भाष्य के साथ योग दर्शन भी प्रचारित होना आवश्यक है। सांख्यदर्शन का भाष्य सूत्रकार के अभिप्राय के अनुसार तत्त्वज्ञानी व्यक्तियों की सहायता से नूतनपद्धति से प्रणीत होकर प्रचारित होना आवश्यक है।

तीनों मीमांसा दर्शनों में घोर विप्लव उपस्थित हुआ है। पूज्यपाद महर्षि जैमिनिकृत कर्म्म मीमांसादर्शन अतिवृहत् होने पर भी वह असम्पूर्ण और एकदेशी है। जैमिनिदर्शन में केवल वैदिक कर्म्मकाण्ड का विज्ञान सुन्दररूप से वर्णित है किन्तु वर्त्तमान समय में वैदिक यागयज्ञ का प्रचार प्रायः लुप्त हो जाने से इस दर्शनशास्त्र द्वारा इस समय किसी प्रकार के हमारे विशेष उपकार के सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है।

धर्म्म क्या है, साधारण और विशेषधर्म्म में भेद क्या है, वर्णधर्म्म क्या है, आश्रम धर्म्म क्या है, पुरुषधर्म्म क्या है, नारी धर्म्म क्या है, जन्मान्तर वाद का विज्ञान क्या है, परलोक में गति किस प्रकार होती है, संसार का रहस्य क्या है, षोडश संस्कार का विज्ञान क्या है, संस्कार शुद्धिद्वारा किस प्रकार क्रिया शुद्धि होती है, उद्भिज्जादि योनियों से मनुष्य योनि में किस प्रकार जीव क्रमशः प्रवेश करता है, मनुष्य पुण्यकर्म्म करके किस प्रकार अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त होता है, कर्म के भेद कितने हैं, क्रियाशुद्धि द्वारा मनुष्य किस प्रकार मुक्त होता है इत्यादि कर्म्म मीमांसा का प्रतिपाद्य विषय है। इस प्रकार का मीमांसा दर्शन का सिद्धान्त ग्रन्थ बहुत काल से लुप्त अवस्था में

था। इस समय श्रीभारतधर्ममहामण्डल के नेताओं के यत्न से एक विस्तृत सूत्रग्रन्थ प्राप्त हुआ है और उसका भाष्य भी संस्कृत भाषा में बनरहा है।

कर्ममीमांसा यद्यपि लुप्त हुई थी तथापि उसका एक बृहत् ग्रन्थ पाया जाता था किन्तु दैवीमीमांसा (मध्यमीमांसा वा भक्तिमीमांसा) का कोई ग्रन्थ भी नहीं मिलता था। इस समय उसका भी एक सिद्धान्तभूत सूत्रग्रन्थ मिला है और उसका संस्कृत भाष्य प्रणीत होकर प्रकाशित होगया है। भक्ति किसको कहते हैं, भक्ति के भेद कितने प्रकार हैं, उपासना के द्वारा मुक्ति किस प्रकार सम्भव है, भगवान् का आनन्दमय स्वरूप क्या है, भगवान् के ब्रह्म ईश और विराट् इन तीन रूपों में भेद क्या है, भक्ति के प्रधान प्रधान आचार्य्य ऋषिगण के स्वतन्त्र स्वतन्त्र मत क्या है, सृष्टि का विस्तृत रहस्य क्या है, अध्यात्म सृष्टि क्या है, अधिदैव सृष्टि क्या है, अधिभूत सृष्टि क्या है, ऋषि किसको कहते हैं, देवदेवी किसको कहते हैं, पितृ किसको कहते हैं, उनके साथ जगत् का सम्बन्ध क्या है, अवतार कैसे होते हैं, अवतार कितने प्रकार के हैं, भक्ति के द्वारा मुक्ति किस प्रकार होसक्ती है, चार प्रकार के योग का लक्षण और उपासना का भेद कितने प्रकार का है, उपासना और भक्ति के आश्रय से साधक किस प्रकार मुक्तिलाभ करने में समर्थ होता है कर्म्म मीमांसा का अन्तिम लक्ष्य क्या है, दैवीमीमांसा का अन्तिम लक्ष्य क्या है, एव ब्रह्ममीमांसा का अन्तिम लक्ष्य क्या है इत्यादि विषय इस दर्शन शास्त्र में वर्णित है। इसी दर्शनशास्त्र के लोप होने से योग और उपासना इन दोनों की एकता सिद्ध करने के विषय में उन्नत ज्ञानियों को भी विमोहित होते हुए देखा गया है।

सप्तम ज्ञानभूमिका अन्तिम दर्शन ब्रह्ममीमांसा है इसको वेदान्त कहाजाता है। उसका अति उत्तम भाष्य श्रीभगवान् शङ्कराचार्य्य प्रणीत पाया जाता है। किन्तु इतने दिनतक दैवीमीमांसा दर्शन के लुप्त अवस्था में रहने से और उपासक सम्प्रदायों के अद्वैतवाद को द्वैतवाद में परिणत करने की चेष्टा करने से वेदान्त विचार में अनेक असुविधाएँ उत्पन्न हुई हैं। यदि मध्यमीमांसा बीच के समय में विलुप्त न होती तो द्वैत और अद्वैतवाद का विरोध कदापि संघटित न होता।

न्यायदर्शन का जो आर्ष भाष्य मिलता है वह अतीव विस्तृत है ही। वैशेषिकदर्शन का विस्तृत भाष्य संस्कृत में प्रणीत होरहा है। योगदर्शन का

विस्तृत भाष्य पूर्व लिखित रीति का प्रणीत होगया है और उसका कुछ अंश विद्यारत्नाकर नामक संस्कृत मासिकपत्र में प्रकाशित हुआ है।

सांख्यदर्शन का संस्कृत भाष्य भी पूज्यपाद महर्षिगण के मत के अनुसार प्रणीत होगया है और उसका कुछ अंश उक्त पत्र में प्रकाशित भी हुआ है, इस भाष्य को पढ़कर शिक्षित मण्डली विस्मित हुई है, और सांख्यदर्शन आस्तिक दर्शन है यह सबही एकवाक्य होकर स्वीकार करते हैं। कर्म्ममीमांसा दर्शन सभाष्य संस्कृत भाषा में शीघ्र प्रकाशित होगा। दैवीमीमांसा दर्शन अर्थात् मध्यमीमांसा दर्शन का भाष्य सम्पूर्ण होगया है और उसके तीनपाद सभाष्य संस्कृत भाषा में उक्त पत्रिका में प्रकाशित होचुके हैं। वेदान्तदर्शन का समन्वय भाष्य भी संस्कृत में प्रकाशित होगा। प्राचीन आर्य्यगण का मत ठीक ठीक उद्धृत करके और अन्यान्य निम्नज्ञानभूमियों के अधिकारों को उन समस्त दर्शनोक्त ज्ञानभूमियों के ठीक ठीक विज्ञान के अनुसार प्रतिपादन करके इस वेदान्त भाष्य को सर्वाङ्गसुन्दर करने की चेष्टा कीजायगी। इन सात प्रकार के दर्शन शास्त्रों का ठीक ठीक प्रचार और इनकी यथाविधि शिक्षा देने के अर्थ इन सातों दर्शनों के संस्कृत भाष्य प्रणयन का कार्य्य बहुत कुछ अग्रसर हो गया है। इस समय हिन्दीभाषा के पाठकवर्ग के अर्थ यह सब दर्शन ग्रन्थ सरल हिन्दीभाषा में विस्तृत भाष्य के साथ क्रमशः प्रकाशित करने की पूरी इच्छा है। और साथही साथ श्रीमद्भगवद्गीता का एक अति उत्तम भाष्य (जिस में श्रीगीताजी के अध्यात्म अधिदैव अधिभूत ये तीनों स्वरूप दिखाये जायँ) प्रकाशित करना निश्चय किया गया है।

हमारे सुहृद्गण में से अनेकों ने परामर्श दिया है कि ज्ञानभूमि के क्रम के अनुसार पहले न्याय और वैशेषिकादि दर्शन प्रकाशित होना उचित है। किन्तु हमने विचार करके देखा है कि जब इससे पहले ही से ये दर्शन हिन्दी में सामान्य रूप से प्रचारित हैं तब इनका विस्तृत भाष्य के साथ प्रचार यद्यपि आवश्यक है तथापि पहलेही इनको प्रकाश करने से पाठकों का तादृश चित्त विनोदन नहीं होगा, दूसरे दैवीमीमांसा आदि दर्शन ग्रन्थों का प्रचार जब बिलकुल ही नहीं था तो इनके पहिले प्रचारित होने से पाठकों की आनन्द, उत्साह और बहुत कुछ अभिज्ञता वृद्धि की विशेष सम्भावना है, तीसरे वैदिक दर्शनशास्त्र प्रचार के कार्य्य में जब हम प्रवृत्त हुए हैं तो प्रथम ही भगवद्भक्ति प्रकाशक दैवीमीमांसा दर्शन और भगवद्गीतारूपी भगवद्वाक्य का प्रकाश अत्यन्त कल्याणकर है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

उपर्युक्त सात वैदिकदर्शन ग्रन्थ प्रकाश के साथ साथ हम योग के क्रिया सिद्धांश सम्बन्धीय पांच ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने की इच्छा करते हैं। उपासना का मूलभित्तिरूप योग का क्रिया सिद्धांश चारभागों में विभक्त है। यथाः—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। इन चारों प्रणालियों के अलग अलग अङ्ग, अलग अलग ध्यान और अलग अलग अधिकार निर्णीत हैं। नाम और रूप के अवलम्बन से जो साधन प्रणाली निर्णीत हुई है उसको मन्त्रयोग कहते हैं। मन्त्रयोग सोलह अङ्गों में विभक्त है और उसके ध्यान को स्थूलध्यान कहते हैं।

स्थूलशरीर की सहायता से चित्तवृत्ति निरोध करने की जो प्रणाली है उस को हठयोग कहते हैं। हठयोग सात अङ्गों में विभक्त है और हठयोग का ध्यान ज्योतिर्ध्यान नाम से अभिहित है।

लययोग और भी अधिक उन्नत अवस्था का साधन है। जगत् प्रसविनी कुल कुण्डलिनी शक्ति जो सकल शरीर में ही विद्यमान है उसी शक्ति को गुरूपदेशानुसार जाग्रत् करके और सहस्रार में लय करके चित्तवृत्ति निरोध करने की जो प्रणाली है उसको लययोग कहते हैं। लययोग नौ अङ्गों में विभक्त है और उसके ध्यान का नाम बिन्दु ध्यान है।

योगप्रणालियों में सर्वश्रेष्ठ योगप्रणाली का नाम राजयोग है। उल्लिखित त्रिविध साधक को उन्नत अवस्था में राजयोग की सहायता लेनी ही पड़ती है। केवल विचारशक्ति द्वारा चित्तवृत्ति निरोध करने की जो प्रणाली है उसको राजयोग कहते हैं। राजयोग सोलह अङ्गों में विभक्त है और उसका ध्यान ब्रह्मध्यान नाम से अभिहित होता है। उपर्युक्त तीन योगप्रणालियों की समाधि को सविकल्प समाधि कहते हैं किन्तु राजयोग की समाधिही निर्विकल्प समाधि है।

उपर्युक्त चार प्रकार की योगप्रणाली के अङ्ग और उपाङ्ग वेद, आर्षसंहिता, पुराण एवं तन्त्रादि में अनेक स्थानों में ही देख पड़ते हैं। किन्तु अधिकारानुसार इन प्रत्येक की क्रियाएँ अलग अलग और यथाक्रम किसी ग्रन्थ में भी नहीं मिलती हैं। प्राचीन समय में गुरु और शिष्य सम्प्रदाय का अधिकार उन्नत था इसीसे ही इस प्रकार साधन विभाग की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु वर्तमान समय में इन चारों साधन प्रणालियों के अलग अलग सिद्धान्त

ग्रन्थ न मिलने से योगी और उपासक सम्प्रदाय में घोर विप्लव उपस्थित हुआ है।

हमने मन्त्रयोगसंहिता, हठयोगसंहिता, लययोगसंहिता और राजयोगसंहिता यह चार सिद्धान्त ग्रन्थ पाये हैं। इनमें प्रत्येक साधन प्रणाली विस्तृत और सुन्दररूप से वर्णित है। इन चारों ग्रन्थों के अतिरिक्त गुरुलोग इनके अवलम्बन से शिष्यों को किस प्रकार शिक्षा देवें इस विषय का योगप्रवेशिका नामक और एक ग्रन्थ है। उक्त पांचों ग्रन्थ प्रायः विद्यारत्नाकर नामक संस्कृत मासिक पत्र में प्रकाशित किये गये हैं। क्रमशः हिन्दी अनुवाद के साथ उनको प्रकाशित करेंगे। इस समय प्रथम में मन्त्रयोगसंहिता का हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया गया।

उपर्युक्त सात दर्शनग्रन्थ और पांच योगग्रन्थ हिन्दीभाषा में प्रकाशित होने से हिन्दी के दार्शनिक जगत् की उन्नति के विषय में एक असाधारण परिवर्त्तन संसाधित होगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

वेद का ज्ञानकाण्ड उपनिषद् हैं उनके सार भूत अर्थ को लेकर श्रीभगवान् के पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया है उस सर्व्व शास्त्रमयी गीता का एक बृहत्भाषाभाष्य प्रणयन किया जा रहा है जिसको क्रमशः प्रकाशित करने का विचार है। आज तक इस प्रकार का आध्यात्मिक व्याख्यापूर्ण भाष्य प्रकाशित नहीं हुआ था।

इस प्रकार दर्शनों में से दैवीमीमांसादर्शन का हिन्दी संस्करण, योगसंहिताओं में से मंत्रयोगसंहिता और श्रीमद्भगवद्गीता का भाषाभाष्य प्रकाशित करना पहिले पहिल प्रारम्भ किया गया है। आशा है हिन्दी भाषोन्नति प्रेमी, दार्शनिक ज्ञानेच्छुक, योगसाधनाभ्यासी तथा योग के क्रियासिद्ध अंश के जिज्ञासु और सर्वोत्कृष्ट गीतोपनिषद् के ज्ञान को समझने की इच्छा करनेवाले धार्मिक व्यक्ति इस सत्पुरुषार्थ को देखकर प्रसन्न होंगे और इनसे लाभ उठाकर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे।

ॐ तत्सत्

मन्त्रयोग-संहिता ।

भूमिका ।

चित्तवृत्ति का निरोध करके श्रीभगवान् का सान्निध्य लाभ करने के लिये जितनी साधन प्रणालियाँ होसक्ती हैं उन सबों को पूज्यपाद महर्षियों ने चार भागों में विभक्त किया है । यथाः—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, और राज-योग । इन चार प्रकार के साधनों में से मन्त्रयोग प्रथम और सर्वलोकहितकर है ।

यह संसार नामरूपात्मक है । सृष्टि का कोई भी पदार्थ नामरूप से अतीत नहीं होसक्ता है । सूक्ष्म जगत् और स्थूल जगत् इन दोनों के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग का नाम और रूप है यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है । सुतरां इन नाम रूपों के अवलम्बन से जो साधन किये जायँ वे सब मन्त्र-योग के अन्तर्गत हैं ।

इस साधनप्रणाली का मूल सिद्धान्त यह है कि जिस प्रकार कोई मनुष्य जब कभी किसी भूमिपर गिर जाता है तब वह वहांसे उठते समय उसी भूमिको अवलम्बन करके उठता है उसी प्रकार मनुष्यों का अन्तःकरण भी जब नाम रूपों के अवलम्बन से वृत्तियों के द्वारा चाञ्चल्य और विषय संयोग के द्वारा बन्धन दशा को प्राप्त हुआ है तब केवल

उसी नामरूप के अवलम्बन से ही सुकौशल पूर्ण क्रियाओं के द्वारा साधक चित्तवृत्तियों का निरोध करके बन्धन से मुक्त हो सक्ता है। ❀।

जहां कोई कार्य्य होगा वहां कम्पन अवश्य होगा। और जहां कम्पन होगा वहां शब्दका भी होना स्थिर निश्चय है, यह बात स्वतःसिद्ध और विज्ञानानुमोदित है। सृष्टि के प्रारम्भमें जब साम्यावस्था की प्रकृति से प्रथम सृष्टिकार्य्य आरम्भ हुआ तब उसी साम्यावस्था से जो प्रथम हिल्लोल की ध्वनि हुई वही प्रणव है। + । यह केवल विज्ञानवेत्ताओं का अनुमान सिद्ध विषय नहीं है, प्रत्युत योगीलोग इसको प्रत्यक्ष करते हैं । योग साधन के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करके साधक जब साम्यावस्था प्रकृति के निकटस्थ हो जाता है, तब उस साधक को सदा सर्वदा वह प्रणव ध्वनि सुनाई देती है।

साम्यावस्था की प्रकृति के साथ जैसा प्रणव का सम्बन्ध है वैषम्यावस्था की प्रकृति के साथ ऐसा ही बहुत से बीज मन्त्रों का सम्बन्ध है । साम्यावस्था की प्रकृति में सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की समता रहती है। जैसे किसी थाली में जल रखकर उस थाली को हिलाया जाय तो सब से प्रथम उस थाली का सब जल एकबार एकदम हिल जायगा और पीछे उसीसे नाना तरङ्ग उत्पन्न होकर

❀ इस ग्रंन्थ के "मन्त्रयोग-लक्षण" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।
+ इस ग्रन्थ के "मन्त्रयोग-विज्ञान" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

परस्पर के घात प्रतिघात से बहुतसी तरंगमाला उत्थित हो जल को आलोड़ित करेंगी; तैसेही साम्यावस्था की प्रकृति से प्रथम कार्य्य आरम्भ होने पर तीनों गुणों का जो समान हिल्लोल हुआ उसी हिल्लोल से ॐकार का सम्बन्ध रहता है और नाना तरङ्गोंसे आलोड़ित जलकी जो अवस्था होती है उसी अवस्था की न्याईं वैषम्यावस्था की प्रकृतिकी विशेष विशेष अवस्थाओं के शब्दोंसे नाना बीजमन्त्रों का सम्बन्ध है। *। ॐकार या बीजमन्त्र जिनका कि मुखसे उच्चारण किया जाता है वे सब उन ध्वन्यात्मक प्रथम शब्दों के वर्णात्मक प्रतिशब्दमात्र हैं। इन प्रथम शब्दों का श्रुतिज्ञान समाधि के द्वारा होता है यह योगियों का सिद्धान्त है। प्रणवमन्त्र ब्रह्म का वाचक है। और बीजमन्त्र-समूह भिन्न भिन्न सगुणरूप तथा देव देवियों के वाचक हैं।

मन्त्र शाखापल्लवयुक्त व केवल शाखापल्लवमय भी होता है। मन्त्र के शाखा पल्लव समूह भावात्मक हैं इसीसे मन्त्र (१) केवल ॐकारस्वरूप, (२) केवल बीजस्वरूप, (३) ॐकार, बीज और शाखापल्लवयुक्त, (४) केवल बीज और शाखापल्लवयुक्त और (५) केवल शाखापल्लवमय इन रीतियों से अनेक प्रकार के होते हैं। ‡। जिस साधक की जैसी प्रकृति, प्रवृत्ति और योग्यता होती है परीक्षापूर्वक उसको वैसेही मन्त्रका उपदेश यदि यथावत् किया जाय तो उसी मन्त्र के जप से साधक का अवश्यमेव कल्याण होगा।

* इस ग्रन्थ के "मन्त्रयोग-विज्ञान" नामक प्रकरणमें द्रष्टव्य है।

‡ इस ग्रन्थ के "मन्त्र-भेदवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

मन्त्र का जप करने के लिये तीन प्रकार की विधि है, यथाः—वाचनिक जप, उपांशु जप, और मानस जप । मन्त्र का जप करते समय यदि दूसरे को सुनाई दे तो उस जप को वाचनिक जप कहा जाता है। यदि जप करते समय और किसी को सुनाई नहीं दे, परन्तु अपने को अनुभव होता रहे तो उसे उपांशु जप कहा जाता है, और जप करते समय यदि जिह्वा नहीं हिलती रहे एवं मनके द्वारा ही जप किया जाय तो उसे मानस जप कहते हैं । वाचनिक जप से उपांशु जप श्रेष्ठ और उपांशु जपसे मानस जप श्रेष्ठ है। ❀ ।

मन्त्रयोग में स्थूलध्यान की विधि है । ध्यानप्रणाली चार भाग में विभक्त है । यथाः—स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान, बिन्दुध्यान, और ब्रह्मध्यान । राजयोग में ब्रह्मध्यान की विधि, लययोग में बिन्दुध्यान की विधि, हठयोग में ज्योतिर्ध्यान की विधि, और मन्त्रयोग में स्थूलध्यान की विधि योगशास्त्रों में वर्णित है ।

श्रीभगवान् के नित्य, सत्य, अनन्त भावों में से कई एक भावों के आश्रय से जो मूर्त्ति कल्पना की जाती है उसीको स्थूलध्यान कहते हैं । सनातन धर्म्म के अनुसार नश्वर मूर्त्तियों का ध्यान नहीं किया जाता है; अर्थात् आर्य्य-शास्त्रों के अनुसार मूर्त्तिपूजा नहीं की जाती है । मन्त्र-योग का स्थूलध्यान अति गभीर विज्ञान से युक्त है । भग-वद्राज्य के पवित्र आध्यात्मिक भावों के अवलम्बनपूर्वक

❀ इस ग्रन्थ के "जपवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है ।

प्रकारान्तर से उन्हीं भावों के रूपकी कल्पना की जाती है। वे सब रूप नित्य, शुद्ध और सत्य भावमूलक हैं। ❀। इस कारण सनातन धर्म्म का स्थूलध्यान जड़मूर्त्तिपूजा नहीं है।

मनुष्य भावों का दास है। भावशून्य होकर मनुष्य का अन्तःकरण एक मुहूर्त्त भी स्थिर नहीं रह सक्ता है। वैदिक दर्शनों का यह सिद्धान्त है कि भावशुद्धि के द्वारा असत् कार्य्य भी सत् हो जाता है और भावमालिन्य के हेतु सत् कार्य्य भी असत् हो जाता है। उदाहरणरूपेण कहा जासक्ता है कि मनुष्यहत्या एक असत् कार्य्य है, परन्तु यदि वह धर्मयुद्ध के लिये या राजा अथवा साधुजनों की रक्षा के लिये हो तो वह धर्म्मकार्य्य कहलावेगा। अर्थात् मनुष्यहत्यारूप कार्य्य असत् होने पर भी भावशुद्धि के कारण सत् हो जाता है। इसी प्रकार आश्रयदान एक पुण्यकार्य्य है, परन्तु कोई व्यक्ति यदि किसी पापी का पाप जानता हुआ भी उसे आश्रय और प्रश्रय दे तो उससे उसका वह आश्रय तथा अभयदानरूप सत्कार्य्य भी असत् भावजन्य पापों में गिना जावेगा। इस प्रकार सनातनधर्म्म में भावशुद्धि का प्राधान्य यथेष्टरूप से वर्णित है। †।

भावतत्त्व को समझने के लिये इस प्रकार समझना चाहिये कि भोग्य विषय को देखकर इन्द्रिय का सम्बन्ध अनु-

❀ इस ग्रन्थ के "ध्यानवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

† भावेन लभ्यते सर्वं भावाधीनमिदं जगत्। भावं विना महाकाल! न सिद्धिर्जायते क्वचित्॥ इति तन्त्रे।

मान किया जाता है। इन्द्रिय की क्रिया को देखकर अन्तः-करण की वृत्ति का अनुमान हो सक्ता है, और तब अन्तः-करण की वृत्ति के मूल में जो भाव रहता है सो अनुभूत होता है। स्त्रीरूप विषय को प्रथम दर्शनेन्द्रियने देखा फिर उससे अन्तःकरण में नाना वृत्तियों का उदय हुआ; परन्तु उस द्रष्टा का भाव यदि मलिन रहा तो वह द्रष्टा उस स्त्रीरूप विषय को इन्द्रियभोग्य मान लेगा और यदि उसके अन्तःकरणमें भाव की शुद्धता रही तो वह उस स्त्रीरूप विषय को मातृरूपमें अथवा जगज्जननी की प्रतिकृतिरूप में देखने को समर्थ होगा। इसी प्रकार सनातन धर्म्म में भावका यथार्थ स्वरूप गृहीत होकर भावशुद्धि के बहुत से उपाय निश्चित हुए हैं।

भावराज्य के पवित्र आध्यात्मिक भावों को अवलम्बन-पूर्वक विष्णु, शिव, देवी आदि के स्थूल ध्यान समूह का निर्णय किया गया है। ❀। शक्तिरूपों में से दुर्गादेवी का रूप प्रधान माना गया है। उन्हीं दुर्गादेवी के रूप का भाव समझने के लिये इस प्रकार समझना चाहिये कि महिषा-सुररूप तमोगुण को सिंहरूपी रजोगुण ने परास्त किया है और ऐसे सिंह के ऊपर आरोहण की हुई सिंहवाहिनी माता दुर्गा हैं जो कि शुद्ध सत्त्वगुणमयी ब्रह्मरूपिणी व दशदिग्-रूपी दशहस्तों में शस्त्रधारणपूर्वक पूर्णशक्तिशालिनी हैं। उनकी एक ओर बुद्धि के अधिष्ठाता गणपति तथा धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी देवी और दूसरी ओर बल के अधिष्ठाता

❀ इस ग्रन्थ के "पंचदेव-विज्ञान" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

कार्त्तिकेय तथा विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी विराजमान हैं। अतः दुर्गादेवी सर्वशक्तिमयी जगज्जननी महामाया हैं। इसी प्रकार सनातनधर्म्मोक्त स्थूलध्यानसमूह सद्भावमय है।

मन्त्रयोग में जैसा अनेकप्रकार के मन्त्रों का वर्णन है उसी प्रकार पञ्चसगुणदेवात्मक बहुतसे स्थूल मूर्त्तियों का वर्णन है। सगुण ध्यान में पांच प्रकार के ध्यान हैं; यथाः- विष्णु, सूर्य्य, देवी, गणेश, और शिव। *। इस प्रकार पंच भेद का कारण पूज्यपाद महर्षियों ने ऐसा वर्णन किया है कि सृष्टि पांचभौतिक है इसीसे मनुष्य प्रकृति में भी पांच भेद रहा करते हैं। इसी कारण स्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रकृति के लिये पंचोपासना की सृष्टि हुई है। जिस प्रकार प्रकृति, प्रवृत्ति और योग्यता को देखकर मन्त्रोपदेश करना उचित है यदि उसी प्रकार साधक की प्रकृति, प्रवृत्ति और योग्यता को देख कर यथायोग्य ध्यान का उपदेश दिया जाय तब साधक की आध्यात्मिक उन्नति होती है।

मन्त्रयोग सोलह अंगों में विभक्त है। †। उन सोलह अंगों का नाम, यथाः—(१) भक्ति, (२) शुद्धि, शुद्धि बहुत प्रकार की है, जैसे दिक्शुद्धि, स्थानशुद्धि, शरीरशुद्धि, अन्तःशुद्धि इत्यादि। (३) आसन अर्थात् बैठनेकी प्रणाली और बैठने का आधार। (४) पंचांग सेवन, यथाः— अपने अपने सम्प्रदाय का गीतापाठ, सहस्रनाम पाठ, स्तोत्र पाठ

* इस ग्रन्थ के "पंचदेव-विज्ञान" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।
† इस ग्रन्थ के "मन्त्रयोगाङ्गवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

इत्यादि । (५) आचार अर्थात् जिस रीति से साधक को रहना चाहिये। आचार तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार के हैं। (६) धारणा, जो कि अन्तर् और बहिर्भेद से दो प्रकार की है। (७) दिव्यदेशसेवन, दिव्यदेश सोलह प्रकार के हैं। जिन आधारों में उपासना की जाती है उसे दिव्यदेश कहते हैं यथाः—अग्नि, जल, मूर्त्ति, तस्वीर (पट), हृदय, मन आदिको दिव्यदेश कहा गया है। इसी दिव्य देशका विज्ञान समझने से यह सहज़ ही से समझ में आवेगा कि सनातनधर्म्मावलम्बिगण किस प्रकार सुगमता के साथ केवल कई एक अवलम्बनविशेष को आश्रय करके निराकार ब्रह्मकी उपासना करते हैं। (८) प्राणक्रिया, प्राणायाम, न्यासादि। (९) मुद्रा, मुद्रासमूह भी भावमय शारीरिक क्रियामात्र है। (१०) तर्पण, (११) हवन, (१२) बलि, (१३) याग, याग भी बहिःपूजा और अन्तःपूजा भेद से दो प्रकार के हैं। (१४) जप, (१५) ध्यान, (१६) समाधि। मन्त्रयोगसमाधि का नाम महाभाव है।*। इन सोलह अंगों का यथावत् एवं यथाक्रम साधन करने से योगी समाधि में सिद्धिलाभ पूर्वक आत्मसाक्षात्कार करने में समर्थ होते हैं। समाधि के द्वारा भगवत्सान्निध्य प्राप्त होता है। समाधि में ही श्रीभगवान् का स्वरूप उपलब्ध किया जाता है। इन सोलह अंगों से पूर्ण मन्त्रयोग का वर्णन इस संहिता में किया गया है।

---

* इस ग्रन्थ के "समाधिवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

मन्त्रयोगसंहिता ।

तन्त्र ।

मङ्गलाचरण ।

(१) सच्चिदानन्दमय परमात्मा जिनसे इस ब्र-ह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, जिन में ब्रह्माण्ड स्थिर रहता है, और अन्त में जिन में लय होता है ऐसे सर्वशक्तिमान् भगवान् को नमस्कार । जो भगवान् सर्वव्यापक और रूपरहित होने पर भी जिनको वै-ष्णवगण विष्णुरूप में, गाणपत्यगण गणपतिरूप में, शाक्तगण देवीरूप में, सौर्यगण सूर्यरूप में, और शैवगण शिवरूप में उपासना करते हैं, ऐसे लीलाधारी श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार ।

---

(१) श्रीसच्चिदानन्दमयात्परात्मनः
समुद्गतं विश्वमिदं यतो विभोः ।
स्थितिश्च यस्मिञ्जगतो लयोऽपि च
नमोऽस्तु तस्मै परमात्मने भृशम् ॥
एकं रूपविवर्जितं निखिलगं ध्यायन्ति पञ्चात्मना
विष्णुं वैष्णवपुङ्गवा गणपतिं यं गाणपत्या जनाः ।
शक्तिं तच्चरणारविन्दरसिकाः सौर्याश्च सूर्यं शिवं
शैवा यं समुपासते नम इदं लीलात्मनेस्तान्मम ॥

जो निर्गुण और वाक् मन से अतीत होने पर भी साधक के हितार्थ सगुणरूप धारण करके उनको परमपद प्राप्त कराते हैं; जो एक और अद्वितीय होने पर भी और भगवद्गीता, भगवतीगीता, गणेशगीता, आदित्यगीता, एवं शिवगीता में अलग अलग निर्णीत होने पर भी एकही हैं ऐसे परमात्मा को नमस्कार।

आर्य ऋषिगणों में से यद्यपि अनेक महापुरुषों ने ही मन्त्रयोग के उपदेश दिये हैं, तथाऽपि उपदेश की अधिकता के कारण नारद, पुलस्त्य, गर्ग, वाल्मीकि, भृगु, बृहस्पति, शुक्र, वशिष्ठ ये ही पूज्य मुनिगण इस मार्ग के सर्वश्रेष्ठ आचार्य समझे जा सकते हैं, इस कारण उनका मङ्गलकारक–नाम–स्मरणपूर्वक मन्त्रयोगसंहिता का वर्णन आरम्भ किया जाता है।

यो निर्गुणो मनोवाचामगोचरतया स्थितः।
सोऽयं साधककल्याणं विधातुं सगुणां तनुम्॥
धृत्वा नयति तानाशु परमं पदमव्ययम्।
एकत्वेऽप्यद्वितीयत्वे यस्य वै परमात्मनः॥
भगवच्छक्तिगणपसूर्यरुद्रान्वितासु वै।
गीतासु वर्णनं भेदात्सोऽधुना संनमस्यते॥

आचार्या मन्त्रयोगे यदपि मुनिगणाः सन्ति चाऽन्ये प्रसिद्धाः
मन्त्रव्याख्याविशेषैर्जगति बहुमतो नारदोऽसौ पुलस्त्यः।
गर्गो वाल्मीकिरार्यो भृगुरमरगुरुः शुक्रदेवो वशिष्ठः
स्मृत्वा नामाष्टकं तच्छुभमनुविहिता संहिता मन्त्रयोगे॥

मन्त्रयोगलक्षण।

(२) सृष्टि नामरूपात्मक होने के कारण नाम रूप के अवलम्बन से ही साधक सृष्टि के बन्धन से अतीत होकर मुक्तिपद प्राप्त कर सकता है। जहां मनुष्य गिरता है उसी भूमि के अवलम्बन से पुनः उठ सकता है। नामरूपात्मक विषय जीव को बन्धन युक्त करते हैं, नामरूपात्मक प्रकृति–वैभव जीव को अविद्या से ग्रास करे रहते हैं। सुतरां अपनी अपनी सूक्ष्म प्रकृति और प्रवृत्ति की गति के अनुसार नाममय शब्द और भावमय रूप के अवलम्बन से जो योगसाधन किया जाय उसको मन्त्रयोग कहते हैं। मन्त्रयोग सब अधिकारियों के कल्याणप्रद होने के कारण सर्वजीवहितकारी है। और पञ्चतत्त्वों के प्राधान्य के अनुसार मनुष्यप्रकृति पञ्चधा होने के

---

(२) नामरूपात्मिका सृष्टिर्यस्मात्तदवलम्बनात्।
बन्धनान्मुच्यमानोऽयं मुक्तिमाप्नोति साधकः॥
तामेव भूमिमालम्ब्य स्खलनं यत्र जायते।
उत्तिष्ठति जनः सर्वोऽप्यध्यक्षेणैतत्समीक्ष्यते॥
नामरूपात्मकैर्भावैर्बध्यन्ते निखिला जनाः।
अविद्याग्रसिताश्चैव तादृक्प्रकृतिवैभवात्॥
आत्मनः सूक्ष्मप्रकृतिं प्रवृत्तिं चानुसृत्य वै।
नामरूपात्मनोः शब्दभावयोरवलम्बनात्।
यो योगः साध्यते सोऽयं मन्त्रयोगः प्रकीर्त्तितः॥

कारण मन्त्रयोगोक्त उपासनापद्धति के पांच भेद हैं। वेही पञ्चोपासना कहाते हैं।

अवतार आदि की उपासना भी इन्हीं पांचों के अन्तर्गत है। पञ्चोपासना ब्रह्मोपासना ही है। और मन्त्रयोग वैदिकविज्ञानसम्मत और अभ्रान्त है।

मन्त्रयोग विज्ञान।

(२) जहां कुछ कार्य है वहां अवश्य कम्पन होगा, जहां कम्पन है वहां अवश्य शब्द होना भी सम्भव है। सृष्टिक्रिया भी एक प्रकार का कार्य है, एवं प्रकृति के प्रथम हिल्लोल से जो कम्पन होता है और उससे जो शब्द होता है वही मङ्गलकारी ओङ्काररूप प्रणव है।

श्रेयः सम्पादकत्वेन सर्वेषामधिकारिणाम्।
मन्त्रयोगः समाख्यातः सर्वजीवहितप्रदः॥
प्राधान्यात्पञ्चतत्त्वानां पञ्चधा प्रकृतिर्मता।
उपासना पञ्चविधा मन्त्रयोगस्य कथ्यते॥
मानवप्रकृतेर्भेदात्पञ्चोपासनमिष्यते।
उपासनाऽवताराणामत्रैवान्तर्भवत्यतः॥
उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्।
निश्चितोऽयं मन्त्रयोगो वेदविज्ञानसम्मतः॥

(२) कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत्स्पन्देन सव्यापकं
स्पन्दश्चाऽपि तथा जगत्सु विदितः शब्दान्वयी सर्वदा।
सृष्टिश्चाऽपि तथादिमाकृतिविशेषत्वादभूत्स्पन्दिनी
शब्दश्चोदभवत्तदा प्रणव इत्योङ्काररूपः शिवः॥

जिस प्रकार साम्यावस्था से सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृति का शब्द ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक ओङ्कार है, उसी प्रकार वैषम्यावस्थापन्न प्रकृति *के नाना शब्द हैं वही नाना शब्द नाना उपासनाओं के नाना बीजमन्त्र हैं। पाञ्चभौतिक सृष्टि होने के कारण सृष्टि पञ्चभाग में विभक्त होती है इस कारण पञ्चोपासना की रीति वेद ने आज्ञा की है। प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार यदि श्रीगुरुदेव मन्त्र का उपदेश देवें अथ च शिष्य की यथारुचि देवोपासना का उपदेश करें तो मुमुक्षु शिष्य शीघ्रही अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है।

साम्यस्थप्रकृतेर्यथैव विदितः शब्दो महानोमिति
ब्रह्मादित्रितयात्मकस्य परमं रूपं शिवं ब्रह्मणः।
वैषम्ये प्रकृतेस्तथैव बहुधा शब्दाः श्रुताः कालतः
ते मन्त्राः समुपासनार्थमभवन्बीजानि नाम्ना तथा॥

जगति भवति सृष्टिः पञ्चभूतात्मिका य-
त्तदिह निखिलसृष्टिः पञ्चभागैर्विभक्ता।
श्रुतिरपि विधिरूपेणादिशन्तीह पञ्च
विविधविहितपूजारीतिभेदान्प्रमाणम्॥

प्रकृतिमिह जनानां सम्परीक्ष्य प्रवृत्तिं
गुरुरिह यदि दद्यान्मन्त्रशिक्षां यथावत्।
रुचिसमुचितदेवोपासनामादिशेद्वा
व्रजति लघु स शिष्यो मोहपारं मुमुक्षुः॥

* साम्यावस्था प्रकृति उसको कहते हैं जहां त्रिगुण की समता रहती है, और सृष्टि नहीं रहती। और वैषम्यावस्था प्रकृति उसको कहते हैं जहां त्रिगुण की समता नष्ट होजाती है और सृष्टि रहती है।

परब्रह्म निराकार है और उनका कोई रूप नहीं है, उस रूपरहित और विराट्पुरुषरूपी परमात्मा के रूप की कल्पना भावद्वारा साधकगण किया करते हैं। अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार भगवद्रूप का ध्यान व वीजमन्त्र के जप से योगी शीघ्रही मुक्तिपद को प्राप्त करलेता है। इसी योग के क्रम को मन्त्रयोग कहते हैं। शास्त्रों में विद्वद्वरों ने सुकौशलपूर्ण कर्म को योग शब्द से वर्णन किया है। इस प्रकार निराकार सर्वाधार ब्रह्म को शुभ रूपयुक्त मानकर जब भक्तिपूर्ण जीव उपासना करेगा तबही वह उपासक कहा सकेगा; तबही क्रमशः मुक्तिपद को प्राप्त कर सकेगा।

साधनप्रशंसावर्णन।

(४) मन्त्रयोग के साधन से साधक को परम अभय पद की प्राप्ति होती है। साधन परम अमृत-

---

आकारो न हि विद्यते किमपि वा रूपं परब्रह्मणो
रूपं तत्परिकल्प्यते जनगणैः किञ्चिज्जगद्रूपिणः।
ध्यायद्भिर्निजवृत्तिमार्गचलितैर्देवं परं रूपिणं
मन्त्रं वा सततं जपद्भिरिह तैर्मुक्तिः परा लभ्यते॥
योगोऽयं परिकथ्यते क्रमयुतः सन्मन्त्रयोगः स्थिरो
योगः कर्मसुकौशलं निगदितं शास्त्रेषु विद्वद्वरैः।
ध्यायन् रूपविवर्जितस्य निखिलाधारस्य रूपं शुभं
देही भक्तिरतः प्रयाति परमां मुक्तिं शिवोपासकः॥

(४) प्राप्तं जीवैः परममभयदं शाश्वतं ब्रह्मयोगैः
लब्धं ज्ञानं परमममृतं साधनैः साधकेन।

रूप ज्ञान का देनेवाला है। इस प्रशंसनीय योगसाधन के अनुसरण करने में कुछ भी क्लेश की प्राप्ति नहीं होती। देवता और मनुष्यों से पूजनीय इसका साधक ब्रह्म को जानता हुआ ब्रह्मरूपही होजाता है।

(दीक्षाप्रयोजन)

(५) दीक्षा सम्पूर्ण जपों का मूल है। और तपश्चर्या का मूल भी दीक्षाही है। सद्गुरु से प्राप्त की हुई दीक्षा सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करनेवाली है। जो मनुष्य विना दीक्षा ग्रहण किये जप पूजा आदि क्रियाओं को करते हैं उनके वह सब कर्म पत्थर में बोये हुए बीज की नांई फलीभूत नहीं होते। दीक्षाहीन मनुष्य का किया हुआ कोई कर्मानुष्ठान सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और न उसकी सद्गति होती है। इस लिये सम्पूर्ण उपाय करके भी गुरु से दीक्षा ग्रहण करना उचित है।

श्लाघ्यो योगो यमनुसरतो नाऽस्ति कश्चिद्विपादो
धन्यो योगी सुरनरगुरुर्ब्रह्मविद् ब्रह्म एव ॥

(५) दीक्षामूलो जपः सर्वो दीक्षामूलं परं तपः।
सद्गुरोराहिता दीक्षा सर्वकर्माणि साधयेत् ॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
न फलन्ति ध्रुवं तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥
इह दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥

(श्रीगुरुमहिमा)

(६) ईश्वर के साथ जैसा ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध है, उसी प्रकार गुरु के साथ क्रियायोग का सम्बन्ध है। दीक्षाविधि में ईश्वर कारणस्थल और गुरु कार्य-स्थल कहे गये हैं, इस कारण गुरु ब्रह्मरूप हैं। जो लोग गुरु के विषय में मनुष्यबुद्धि, और मन्त्र के विषय अक्षरबुद्धि और देवप्रतिमा में पाषाणबुद्धि रखते हैं वे नरकगामी होते हैं। माता और पिता जन्म देने के कारण पूजनीयहैं किन्तु गुरु धर्म और अधर्म का ज्ञान करानेवाले हैं, इस कारण उनका पूजन पितृगणों से भी अधिक यत्न करके करना उचित है।

---

(६) यादृगस्तीह सम्बन्धो ब्रह्माण्डस्येश्वरेण वै।
तथा क्रियाख्ययोगस्य सम्बन्धो गुरुणा सह ॥
दीक्षाविधावीश्वरो वै कारणस्थलमुच्यते ।
गुरुः कार्यस्थलं चाऽतो गुरुर्ब्रह्म प्रगीयते ॥
गुरौ मानुषबुद्धिं तु मन्त्रे चाक्षरभावनाम् ।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥
जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माऽधर्मप्रदर्शकः ॥

गुरुही पिता हैं, गुरुही माता है, गुरुही देवता है, और गुरुही सद्गतिरूप हैं। परमेश्वर के रुष्ट होने पर तो गुरु बचानेवाले हैं परन्तु गुरु के अप्रसन्न होने पर कोई भी त्राणदाता नहीं है॥

(सद्गुरुलक्षण)

(७) सर्व शास्त्रों में पारङ्गत, चतुर, सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्ववेत्ता, और मधुरवाक्य भाषण करनेवाले हों, सब अङ्ग जिनके पूर्ण और सुन्दर हों, कुलीन अर्थात् सत्कुलोद्भव हों, दर्शन करने में मङ्गलमूर्त्ति हों, इन्द्रियां जिनकी वशीभूत हों, सर्वदा सत्यभाषण करनेवाले हों, ब्राह्मणवर्ण हों, शान्तमानस अर्थात् जिनका मन कभी चञ्चल नहीं होता हो, माता पिता के समान हित करनेवाले हों, सम्पूर्ण कर्मों में अनुष्ठानशील हों, और गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और सन्न्यासी इन आश्रमों में से किसी आश्रम के हों, एवं भारतवर्षनिवासी हों, इस प्रकार के सर्वगुणसम्पन्न महात्मा गुरु करने योग्य कहे गये हैं।

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन॥
(७) सर्वशास्त्रपरो दक्षः सर्वशास्त्रार्थवित्सदा।
सुवचाः सुन्दरः स्वङ्गः कुलीनः शुभदर्शनः॥
जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्राह्मणः शान्तमानसः।
पितृमातृहिते युक्तः सर्वकर्मपरायणः।
आश्रमी देशवासी च गुरुरेवं विधीयते॥

आचार्य और गुरु ये दोनों पर्यायवाचक शब्द हैं, तथाऽपि कार्य के वैलक्षण्य से आचार्य और गुरु इन में भेद भी है । सम्पूर्ण वेद और शास्त्र आदि में सुपण्डित हों और उनका औपपत्तिक ज्ञान शिष्य को करावें वे आचार्य कहाते हैं । जो सर्वदर्शी साधु मुमुक्षुओं के हितार्थ वेदशास्त्रोक्त क्रियासिद्धांश और परमेश्वर की उपासनाके भेदों को यथाधिकार शिष्यों को बतलावें उनको गुरु कहते हैं । दर्शनशास्त्रों की सात भूमि के अनुसार जो वेद और शास्त्र के सकल भेदों को जानते हों, अध्यात्म अधिदैव एवं अधिभूत नामक भावत्रय को भलीभांति समझते हों, और तन्त्र व पुराणों की समाधिभाषा, लौकिकभाषा, परकीयभाषा, इनसे

आचार्यगुरुशब्दौ द्वौ सदा पर्यायवाचकौ ।
कश्चिदर्थगतो भेदो भवत्येवं तयोः क्वचित् ॥
औपपत्तिकमंशं तु धर्मशास्त्रस्य पण्डितः ।
व्याचष्टे धर्ममिच्छूनां स आचार्यः प्रकीर्त्तितः ॥
सर्वदर्शी तु यः साधुर्मुमुक्षूणां हिताय वै ।
व्याख्याय धर्मशास्त्रांशं क्रियासिद्धिप्रबोधकम् ॥
उपासनाविधेः सम्यगीश्वरस्य परात्मनः ।
भेदान्प्रशास्ति धर्मज्ञः स गुरुः समुदाहृतः ॥
सप्तानां ज्ञानभूमीनां शास्त्रोक्तानां विशेषतः ।
प्रभेदान्यो विजानाति निगमस्यागमस्य च ॥
ज्ञानस्य चाधिकारांस्त्रीन्भावतात्पर्यलक्ष्यतः ।
तन्त्रेषु च पुराणेषु भाषायास्त्रिविधां स्थितिम् ॥

भलीभांति परिचित रहकर लोकशिक्षा में निपुण हों, वेही श्रेष्ठ आचार्य कहे जाते हैं। पञ्चतत्त्व के अनुसार जो महापुरुष विष्णूपासना, सूर्योपासना, शक्त्युपासना, गणेशोपासना, और शिवोपासनारूप पञ्च सगुण उपासना के पूर्ण रहस्यों को समझते हों, और जो योगिराज मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, इन चारों के अनुसार चतुर्विध निर्गुणोपासना को जानते हों ऐसे ज्ञानी, निर्मलमानस, सर्वकार्य में निपुण, त्रितापरहित, जीवों का कल्याण करनेवाले, जीवन्मुक्त महात्मा श्रेष्ठ गुरु कहलाते हैं।

(शिष्यलक्षण)

(८) लोभरहित, स्थिरगात्र अर्थात् जिसका

सम्यग्भेदैर्विजानाति भाषातत्त्वविशारदः।
निपुणो लोकशिक्षायां श्रेष्ठाचार्यः स कथ्यते॥
पञ्चतत्त्वविभेदज्ञः पञ्च भेदान्विशेषतः।
सगुणोपासनां यस्तु सम्यग्जानाति कोविदः॥
चतुष्टयेन भेदेन ब्रह्मणः समुपासनाम्।
गभीरार्थां विजानीते बुधो निर्मलमानसः॥
सर्वकार्येषु निपुणो जीवन्मुक्तस्त्रितापहृत्।
करोति जीवकल्याणं गुरुः श्रेष्ठः स कथ्यते॥

(८) अलुब्धः स्थिरगात्रश्च आज्ञाकारी जितेन्द्रियः।

अङ्ग चञ्चल न हो, गुरु का आज्ञाकारी, जितेन्द्रिय, आस्तिक, और गुरु मन्त्र एवं देवता में जिसकी दृढ़ भक्ति हो, ऐसा शिष्य दीक्षा का अधिकारी है। और इन गुणों से विरुद्ध गुण रखनेवाला शिष्य गुरु को दुःख देनेवाला जानना चाहिये।

(निन्द्यगुरुलक्षण)

(६) श्वित्ररोगी, गलितकोढ़वाला, नेत्ररोगी, वामन, जिसके नखों में रोग हो, जिस के दांत कृष्णवर्ण हों, जो स्त्री के वशीभूत हो, जिसका कोई अङ्ग अधिक हो, अङ्गहीन, कपटी एवं रोगी हो, जो बहुत भोजन करनेवाला हो, अत्यन्त बकवाद करनेवाला हो, इन दोषों से जो रहित हों, ऐसे गुरु शिष्य के लिये उचित हैं।

दीक्षा-विवरण ।

(१०) दीक्षा दान करने से पूर्व कुलाकुलचक्र अर्थात्

आस्तिको दृढभक्तश्च गुरौ मन्त्रे च दैवते ॥
एवं विधो भवेच्छिष्य इतरो दुःखकृद्गुरोः ॥
(६) श्वित्री चैव गलत्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः ।
कुनखः श्यावदन्तश्च स्त्रीजितो ह्यधिकाङ्गकः ॥
हीनाङ्गः कपटी रोगी बह्वाशी बहुजल्पकः ।
एतैर्दोषैर्विमुक्तो यः स गुरुः शिष्यसम्मतः ॥
(१०) कुलाकुलं नामचक्रं राशिचक्रं तथैव च ।

देवतोद्धारचक्र, नामचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, अकथहचक्र, और अकडमचक्र अर्थात् मन्त्रोद्धारचक्र जो कहागया है उसका विचार करना आवश्यक है। निर्गुण मन्त्रग्रहण अर्थात् मोक्षाभिलाषी साधकगणों के अर्थ केवल उपरोक्त चक्रों का उद्धार करना ही विधि है; उनके लिये ऋणी धनी चक्र के उद्धार करने की आवश्यकता नहीं है। ऋणी धनी चक्र आदि का विचार उन्हींके लिये उपयुक्तहै जो साधक प्रवृत्तिमार्ग-सम्बन्धी वैषयिक कल्याणों को चाहते हों।

दीक्षा के पूर्व दिन मन्त्रज्ञ गुरु शिष्य को बुलाकर पवित्र कुशासन पर उसको बैठाकर निद्रामन्त्र द्वारा उसकी शिखा बांधें, और शिष्य निद्रा लेने के पूर्व उपवासी व जितेन्द्रिय रहकर तीनवार उस मन्त्र का जप करे एवं गुरुपादुका का स्मरण करके शयन करे। मन्त्र यह है।

नक्षत्राकथहचक्रमकडमं चक्रमीरितम् ॥
तत्र चेन्निर्गुणो मन्त्रो नान्यचक्रं विचिन्तयेत् ।
तथा च धनिमन्त्रं न गृह्णीयाद् यत्प्रयोजनम् ॥
गुरुर्दीक्षापूर्वदिने स्वशिष्यमभिमन्त्रयेत् ।
दर्भशय्यां परिष्कृत्य शिष्यं तत्र निवेशयेत् ॥
स्वापमन्त्रेण मन्त्रज्ञः शिखां तस्य प्रबन्धयेत् ।
तन्मन्त्रं स्वापसमये पठेद्वारत्रयं शिशुः ॥
श्रीगुरोः पादुके ध्यात्वा तूपवासी जितेन्द्रियः ।

नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर॥

इस मन्त्र के पाठपूर्वक शयन कर प्रातः समय उठकर गुरु के निकट उपस्थित हो और गुरुदेव की आज्ञा पाकर अपने स्वप्न में देखे हुए पदार्थों को निवेदन कर शुभाऽशुभ फल को ज्ञात करे।

यदि स्वप्न में कन्या, छत्र, रथ, प्रदीप, प्रासाद, कमल, नदी, हस्ती, वृषभ, माला, समुद्र, फूलयुक्त वृक्ष, पर्वत, घोड़ा, पवित्र मांस, सुरा, और आसव, इन पदार्थों का दर्शन शिष्य को हो तो मन्त्र की सिद्धि समझना उचित है। गुणवान् ब्राह्मण एक वर्ष, क्ष-

नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर॥
स्वप्ने शुभाऽशुभं दृष्टं पृच्छेत्प्रातः शिशुं गुरुः।
कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम्।
कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फलिनं द्रुमम्॥
पर्वतं तुरगं मेध्यमाममांसं सुरासवम्।
एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात्॥

त्रिय दो वर्ष, वैश्य तीन वर्ष, और शूद्र चार वर्ष तक गुरुदेव के सहवास करने से शिष्य की योग्यता को प्राप्त हुआ करता है; तथाऽपि गुरु सर्वशक्तिमान् व ईश्वररूप हैं वे जब चाहें तभी विना देश काल विचारे शिष्य को उपदेश कर सकते हैं, यदि सौभाग्य-वश सिद्ध पुरुष का दर्शन मुमुक्षु को होजाय तो तत्क्षण में शिष्य को दीक्षाग्रहण करना उचित है, उस समय काल आदि का विचार करना अनावश्यक है।

दीक्षोपयोगी काल और देश।

(मास निर्णय)

(११) चैत्रमास में दीक्षा ग्रहण करने से समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। वैशाख में रत्नलाभ, ज्येष्टमास में मरण, आषाढ़मास में बन्धुनाश, श्रावणमास में

वर्षेणैकेन योग्यः स्याद्विप्रो गुणसमन्वितः।
वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्वत्सरैः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता।
तथा गुरुश्च स्वाधीनः सर्वशक्तियुतो विभुः॥
यदि भाग्यवशेनैव सिद्धो हि पुरुषो मिलेत्।
तदैव दीक्षां गृह्णीयात्त्यक्त्वा कालविचारणाम्॥

(११) मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात्समस्तपुरुषार्थदः।
वैशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे च मरणं भवेत्॥
आषाढे बन्धुनाशः स्यात्पूर्णायुः श्रावणे भवेत्।

दीर्घायु, भाद्रमास में सन्ताननाश, आश्विन मास में रत्नसञ्चय, कार्त्तिकमास और अग्रहणमास में मन्त्र की सिद्धि, पौषमास में शत्रुपीड़ा, माघमास में मेधा की वृद्धि, और फाल्गुनमास में मन्त्र ग्रहण करने से सकल मनोरथ पूर्ण होते हैं। परन्तु यदि उत्तम मास भी मलमास होजाय तो वह मास त्याग करनें योग्य है।

(वारनिर्णय)

(१२) रविवार में मन्त्र ग्रहण करने से वित्तलाभ, सोमवार में शान्ति, और मङ्गलवार में आयुक्षय हुआ करता है; इस कारण मङ्गलवार की दीक्षा निषिद्ध है। बुधवार में सौन्दर्यलाभ, वृहस्पतिवार में ज्ञानवृद्धि, शुक्रवार में सौभाग्यलाभ, और शनिवार में दीक्षा ग्रहण करने से यश की हानि होती है।

प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥
कार्त्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथाभवेत्।
पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्मलमासं विवर्जयेत् ।
(१२) रविवारे भवेद्वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत्किल ।
आयुरङ्गारके हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत् ॥
बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञानं स्यात्तु वृहस्पतौ ।
शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनैश्चरे ॥

(तिथि-निर्णय)

(१३) प्रतिपद् तिथि में मन्त्र ग्रहण करने से ज्ञान नाश, द्वितीया में ज्ञानवृद्धि, तृतीया में शुद्धता-प्राप्ति, चतुर्थी में वित्तनाश, पञ्चमी में बुद्धि की वृद्धि, षष्ठी में ज्ञान का क्षय, सप्तमी में सुख लाभ, अष्टमी में बुद्धिनाश, नवमी में शरीरक्षय, दशमी में राज-सौभाग्य की प्राप्ति, एकादशी में पवित्रता, द्वादशी में सर्व कार्य सिद्धि, त्रयोदशी में दरिद्रता, चतुर्दशी में तिर्यक् योनि की प्राप्ति, मासके अवसान में कार्यहानि, और पक्ष के अन्त में दीक्षा ग्रहण करने से धर्म की वृद्धि हुआ करती है। मन्त्रग्रहण में अस्वाध्याय अर्थात् जिन दिनों में वेदपाठ निषिद्ध है वे दिन भी परित्याग करने योग्य हैं। सन्ध्या गर्जन का

---

(१३) प्रतिपद्विहिता दीक्षा ज्ञाननाशकरी मता।
द्वितीयायां भवेज्ज्ञानं तृतीयायां शुचिर्भवेत्॥
चतुर्थ्यां वित्तनाशः स्यात्पञ्चम्यां बुद्धिवर्द्धनम्।
षष्ठ्यां ज्ञानक्षयः सौख्यं लभते सप्तमीतिथौ॥
अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः।
दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत्॥
द्वादश्यां सर्वसिद्धिः स्यात्त्रयोदश्यां दरिद्रता।
तिर्य्यग्योनिश्चतुर्दश्यां हानिर्मासावसानके॥
पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं विवर्जयेत्।

दिन, भूकम्प का दिन, उल्कापात का दिन, आदि अस्वाध्याय दिवस श्रुति में कहे गये हैं यही त्यागने योग्य हैं।

(नक्षत्र-निर्णय)

(१४) अश्विनी नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण करने से सुखलाभ, भरणी में मरण, कृत्तिका में दुःख, रोहिणी में विद्या की प्राप्ति, मृगशिर में सुख, आर्द्रा में बन्धु-नाश, पुनर्वसु में पूर्ण धन की प्राप्ति, पुष्य में शत्रु का नाश, अश्लेषा में मृत्यु, मघा में दुःख का नाश, पूर्वाफाल्गुनी में सौन्दर्य, उत्तराफाल्गुनी में ज्ञान-प्राप्ति, हस्त में धन की प्राप्ति, चित्रा में ज्ञान की प्राप्ति, स्वाती में शत्रु का नाश, विशाखा में सुख की

सन्ध्यागर्जितनिर्घोषभूकम्पोल्कानिपातने ॥
एतानन्यांश्च दिवसाञ्छ्रुत्युक्तान्परिवर्जयेत् ॥

(१४) अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् ।
कृत्तिकायां भवेद्दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत् ॥
मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।
पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात्पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥
अश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।
सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां प्राप्नोति च न संशयः ॥
ज्ञानं चोत्तरफाल्गुन्यां हस्तर्क्षे च धनी भवेत् ।
चित्रायांज्ञानसिद्धिःस्यात् स्वात्यां शत्रुविनाशनम् ॥

प्राप्ति, अनुराधा में बन्धु की वृद्धि, ज्येष्ठा में सन्तति की हानि, मूलमें कीर्त्ति की वृद्धि, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा में कीर्त्ति की प्राप्ति, श्रवण में दुःख, धनिष्ठा में दरिद्रता, शतभिषा में बुद्धिलाभ, पूर्वभाद्र और उत्तरभाद्र में सुख की प्राप्ति, और रेवती नक्षत्र में मन्त्रग्रहण करने से कीर्त्ति की वृद्धि हुआ करती है।

(योग-निर्णय)

(१५) प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा, साध्य, शुक्ल, हर्षण, वरीयान्, शिव, सिद्ध, ब्रह्मा, इन्द्र, इन षोड़श योगों में दीक्षाग्रहण करने से दीक्षा सफलता को प्राप्त होती है।

विशाखायां सुखं चैवाऽनुराधा बन्धुवर्द्धिनी।
ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलर्क्षे कीर्त्तिवर्धनम्॥
पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्त्तिदायिके।
श्रवणायां भवेद्दुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता॥
बुद्धिः शतभिषायां स्यात्पूर्वभाद्रे सुखी भवेत्।
सौख्यं चोत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्त्तिवर्द्धनम्॥

(१५) योगाःस्युःप्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यःशोभनोधृतिः।
वृद्धिर्ध्रुवः सुकर्मा च साध्यः शुक्लश्च हर्षणः॥
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्मा इन्द्रश्च षोडश॥

(करण-निर्णय)

(१६) बव, बालव, कौलव, तैतिल, और वनिज, यह सब करण दीक्षाग्रहण के लिये मङ्गलकारी हुआ करते हैं, यह सब तन्त्रों में प्रतिपादित है ।

(लग्न-निर्णय)

(१७) वृष, सिंह, कन्या, धनु, और मीन इन पांचो लग्नों में और चन्द्र तारा की अनुकूलता देख कर दीक्षादान उचित है । वृष, सिंह, वृश्चिक, और कुम्भ, यही स्थिर लग्न हैं, ये विष्णुमन्त्रग्रहण में शुभकारी हैं । चर लग्न अर्थात् मेष, कर्कट, तुला, और मकर शिवमन्त्रग्रहण में शुभजनक हैं । शक्तिदीक्षा में द्विस्वभावगत लग्न अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु, और मीन, मङ्गलकारी हैं । लग्न के तृतीय, षष्ठ, और ए-

---

(१६) बव-बालव-कौलव-तैतिल-वणिजस्तु पञ्च ।
करणानि शुभान्येव सर्वतन्त्रेषु भाषितम् ॥

(१७) वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्नके ।
चन्द्रतारानुकूल्ये च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्त्तनम् ॥
स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं शुभम् ।
द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥

कादश स्थान में पापग्रह, और लग्न में और उस के चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम, और पञ्चम स्थान में शुभग्रह रहने से दीक्षाग्रहण कल्याणकारी हुआ करता है। दीक्षाकार्य में वक्र ग्रह सर्वनाशक होने के कारण त्याग करने योग्य हैं।

(पक्ष-निर्णय)

(१८) शुक्लपक्ष में दीक्षा शुभ और कृष्णपक्ष की पञ्चमी तक भी दीक्षा मङ्गलकारिणी हुआ करती है। प्रवृत्तिमार्ग के साधकों के अर्थ शुक्लपक्ष और निवृत्तिमार्ग के साधकों के लिये कृष्णपक्ष उपयोगी होता है। निन्दित मास में भी यदि ग्रहण का अवसर मिले तो दीक्षा शुभदा होती है। सूर्यग्रहण के समान उत्तम काल दीक्षाग्रहण के अर्थ इस संसार में और कोई भी नहीं होसकता।

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः।
दीक्षायां तु शुभाः सर्वे वक्रस्थाःसर्वनाशकाः॥

(१८) शुक्लेपक्षे शुभादीक्षा कृष्णेऽप्यापञ्चमाद्दिनात्।
भोगकामैः शुक्लपक्षे मुक्तिकामैः शुभं परे॥
निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा।
सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्ति भूतले॥

(दीक्षास्थान-निर्णय)

(१६) गोशाला में, गुरु के घर में, देवमन्दिर में, वनमें, पुण्यक्षेत्र (तीर्थ) में, बगीचे में, नदी के तीर पर, धात्री (आमलकी) और विल्ववृक्ष के समीप में, पर्वत के ऊपर और गुफा में, दीक्षा होनी चाहिये। गंगातट पर दीक्षा कोटि कोटि गुणित फल प्रदान करनेवाली होती है। अथवा जहां गुरुदेव दीक्षा देना चाहें वही स्थान शुभ है क्योंकि गुरुदेव से पर और कोई संसार में नहीं है, उनका वाक्य वेदवाक्य के समान है।

मन्त्रनिर्णय-विधि।

(२०) ऋतम्भरा बुद्धि से अथवा अनेक प्रकार के चक्रों की सहायता से मन्त्रों का निर्णय करके गुरुदेव शिष्यों को उपदेश देवें। मन्त्र एकाक्षर, अधिकाक्षर, ससेतुक, शाखा पल्लवसंयुक्त आदि अनेक प्रकार के होते हैं उन सबों में से विचारपूर्वक निर्णय

(१६) गोशालायांगुरोर्गेहे देवागारे च कानने।
पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च दीक्षणम्॥
धात्रीविल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुहासु च।
गङ्गायाश्च तटे वाऽपि कोटिकोटिगुणं भवेत्॥
अथवा गुरुरेवास्य दीक्षयेद्यत्र तच्छुभम्।
गुरोःपरतरं नास्ति तद्वाक्यं श्रुतिसंन्निभम्॥
(२०) ऋतम्भरधियावापि नानाचक्रसहायतः।
मन्त्रानाशु विनिर्णीय शिष्यानुपदिशन्तिते॥

करलिये जावें। उपदेश देने में कुलाकुलचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, आदि अनेक प्रकार के चक्र सहायक होते हैं। कहीं सब चक्रों की आवश्यकता होती है और कहीं एकही चक्र की आवश्यकता होती है। इसको योगपारगामी गुरुओं को जानना चाहिये।

(कुलाकुल—चक्र)

(२१) मन्त्रशास्त्रज्ञों के वास्ते कुलाकुलचक्र कहते हैं। पांच ह्रस्व, पांच दीर्घ, विन्द्वन्तसन्धिसम्भव अक्षर, कवर्गादि पांचवर्ग, ष, क्ष, ल, स, ह ये सब वायु अग्नि पृथिवी जल और आकाशरूप हैं। अर्थात् पांच ह्रस्व स्वर और पांच दीर्घस्वर, अं और सन्धि सम्भव ए, ऐ, ओ, औ, य, र, ल, व, श तथा कवर्गादि पांचों वर्गों के पांच पांच अक्षर एवं ष क्ष ल स ह, ये पचास अक्षर पांचों तत्त्वों में विभाग किये गये हैं।

एकाक्षराः सेतुयुक्ता मन्त्राश्चाप्यधिकाक्षराः।
शाखापल्लवसंयुक्ता निर्णेयास्ते विचारतः॥
चक्रं कुलाकुलं नाम राशिनक्षत्रचक्रकम्।
एवमाद्यानि साहाय्यं कुर्वन्ति ह्युपदेशने॥
अपेक्षितानि चक्राणि निखिलान्यपि कुत्रचित्।
क्वचिदेकमिति ज्ञेयं गुरुभिर्योगपारगैः॥
(२१) कुलाकुलस्य भेदो हि प्रोच्यते मन्त्रिणामिह।
वाय्वग्निभूजलाकाशाः पञ्चाशल्लिपयः क्रमात्॥
पञ्चह्रस्वाः पञ्चदीर्घा विन्द्वन्ताः सन्धिसम्भवाः।
कादयः पञ्चशः पक्षलसहान्ताः प्रकीर्तिताः॥

अ आ ए क च ट त प य ष ये मारुत हैं, इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष ये आग्नेय हैं, उ ऊ ओ ग ज ड द व ल ल ये पार्थिव हैं, ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व स ये वारुण हैं और ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह ये नाभस हैं।

कुलाकुलचक्र ।

वायु	अग्नि	पृथ्वी	जल	आकाश
अ	इ	उ	ऋ	ऌ
आ	ई	ऊ	ॠ	ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ल	स	ह

अ आ ए क च ट त प य षा मारुताः ।
इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्षा आग्नेयाः ।
उ ऊ ओ ग ज ड द व ल लाः पार्थिवाः ।
ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व सा वारुणाः ।
ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श हा नाभसाः ॥

साधक के नाम का पूर्वाक्षर और मंत्र का पूर्वाक्षर यदि समान भूतदेवता अर्थात् एक कोष्ठक में आवे तो स्वकुल जानना चाहिये । पृथिवी का जल मित्र है और अग्नि का वायु मित्र है । पृथिवी का वायु तथा अग्नि रिपु है । एवं जल का अग्नि रिपु है । आकाश सबका मित्र है । रिपु होने पर मन्त्र नहीं देना चाहिये, स्वकुल और मित्र होनेपर देना चाहिये । इस शास्त्रमें गुह्यातिगुह्यविषय है और तत्त्वज्ञान और भी गुह्यातिगुह्य है । अनुकूल मंत्रों का तत्त्वज्ञान से निर्णय होता है और कुलाकुलचक्र से तत्त्वज्ञान होता है अतः कुलाकुलचक्र सिद्धिदायी कहागयाहै ।

साधकस्याक्षरं पूर्वं मन्त्रस्याऽपि तदक्षरम् ।
यद्येकभूतदैवत्यं जानीयात् स्वकुलं हि तत् ॥
भौमस्य वारुणं मित्रं आग्नेयस्यापि मारुतम् ।
मारुतम्पार्थिवानाञ्च * आग्नेयञ्चाम्भसां रिपुः ॥
नाभसं सर्वमित्रं स्याद्विरुद्धं नैव शीलयेत् ॥
गुह्यातिगुह्यविषयास्तत्त्वज्ञानं विशेषतः ।
मन्त्राणाञ्चाऽनुकूलानां तत्त्वज्ञानेन निर्णयः ॥
कुलाकुलाख्यचक्रेण तत्त्वज्ञानं प्रजायते ।
अतः कुलाकुलं चक्रं सिद्धिदायि प्रकीर्तितम् ॥

---

* पार्थिवानाञ्चेति चकारात् आग्नेयं पार्थिवानां रिपुः ।

(तन्त्रान्तर का कुलाकुलचक्रविज्ञान)

(२२) सृष्टि पञ्चभूतात्मक है अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, इन पांच तत्त्वों से सृष्टि निर्मित है इस कारण मनुष्यों के लिये पञ्चदेवोपासना का विधान है। उपासना का रहस्य योगपारंगत श्रीगुरुदेवही समझते हैं। इस कारण पञ्चतत्त्वरहस्य-प्रकाशक कुलाकुलचक्र परमहितकर है उससे मन्त्र का कुल निर्णय और देवता का कुल निर्णय दोनों कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। पाञ्चभौतिक शक्ति के तारतम्यसे मन्त्राधिकारनिर्णय और पञ्चभेदात्मक अधिकार के भेद से उपासनाधिकारनिर्णय इस चक्र द्वारा सुसिद्ध होता है। यह चक्र परम हितकर है।

---

(२२) पञ्चभूताज्जगत्सृष्टं पञ्च देवा हि मानवैः।
पूज्यन्ते तद्रहस्यं तु ज्ञायते योगपारगैः॥
पञ्चतत्त्वरहस्यानि प्रकाशयति तत्त्वतः।
अतः कुलाकुलं चक्रं परमं मङ्गलं स्मृतम्॥
मन्त्राणां देवतानां च कुलनिर्णयकारकम्।
पाञ्चभौतिकशक्तेर्हि भेदान्मन्त्राविनिर्णयः॥
पञ्चाधिकारभेदेन चोपासनविनिश्चयः।
चक्रेणैतेन सिद्ध्यन्ति तस्मादेतच्छुभावहम्॥

(राशिचक्र)

(२३) पहले पूर्व और पश्चिम भाग में दो रेखा खैंचकर, इन दोनों रेखाओं के बीच से उत्तर व दक्षिण की ओर दो और रेखायें करके, ईशान आदि चतुष्कोण में और चार रेखा खैंचकर राशिचक्र अङ्कित करना चाहिये। इस चक्र के द्वादश घरों में यथानियम द्वादश राशि कल्पना करके मेष आदि क्रम के अनुसार वर्णों को लिखना उचित है। मेष में चार, वृष के घर में तीन, मिथुन में तीन, कर्कट में दो, सिंह में दो, कन्या में दो, तुला में पांच, वृश्चिक में पांच, धनु में पांच, मकर में पांच, कुम्भ में पांच, मीन में चार और अवशिष्ट शकार आदिवर्ण कन्याराशि के घरमें लिखने योग्य हैं। इस प्रकार से अकारादि वर्ण संस्थापनपूर्वक राशिचक्र पर विचार किया जाता है।

---

(२३) रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्यात,
तन्मध्यतो याम्यकुवेरभेदात्।
ऐशान्यमारभ्य निशाचरान्तं,
कुर्याद्धि रेखामनिलानलान्ताम्॥
वेदाग्निवह्नियुगलश्रवणाक्षिपञ्च,
पञ्चेषुवाणशरवेदमितादिवर्णान्।
मेषादिराशिभवनेषु लिखेच्च सर्वान्,
कन्यागृहे प्रविलिखेदथ शादिवर्णान्॥

राशिचक्र।

मेष
अ आ इ ई

मीन
य र ल व

राशि चक्रम्।
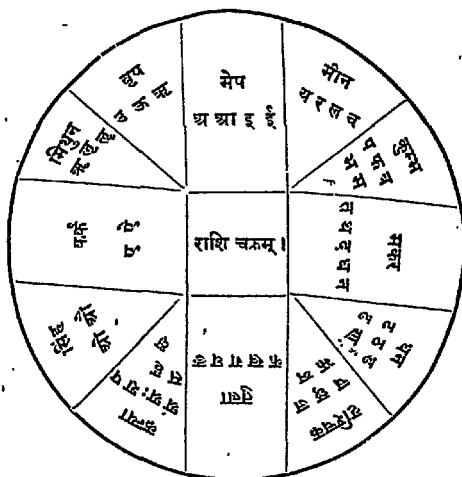
अपने राशि के अनुकूल मन्त्र ग्रहण करने से मङ्गल की प्राप्ति हुआ करती है इसलिये विद्वान् जनों को उचित है कि नाम का आदिवर्ण और मन्त्र का आदि वर्ण लेकर अपने राशि से मन्त्रराशिपर्यन्त गणना द्वारा राशि की शुद्धता का विचार अवश्य करें। इस प्रकार की गणना द्वारा षष्ठ (शत्रु) अष्टम (मृति) और द्वादश (व्यय) राशि स्थित मन्त्र त्याग करने

राशीनां शुद्धता ज्ञेया त्यजेच्छत्रुं मृतिं व्ययम्।
स्वराशेर्मन्त्रराश्यन्तं गणनीयं विचक्षणैः ॥
तेन मन्त्राद्यवर्णेन नाम्नश्चाद्यक्षरेण च।
गणयेद्यदि षष्ठो वाऽप्यष्टमो द्वादशस्तु वा ॥

योग्य हैं। क्योंकि उन राशि स्थित मन्त्रों के ग्रहण करने से अमङ्गल हुआ करता है। लग्न, धन, भ्रातृ, बन्धु, पुत्र, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय, और व्यय, लग्नादि द्वादश राशि की यह द्वादश सञ्ज्ञा है। इन संज्ञाओं के शब्दार्थ के अनुसार शुभाशुभ फल निर्णय किया जा सकता है। विष्णुउपासना-विषय में बन्धु के स्थान में शत्रु और शत्रु के स्थान में बन्धु ऐसा समझना चाहिये।

जन्मराशि स्थित मन्त्र से मन्त्रसिद्धि, धनस्थान-स्थित मन्त्र से धनवृद्धि, भ्रातृस्थान से भ्रातृवृद्धि, बन्धुस्थान से बन्धुप्रियता, पुत्रस्थान से पुत्रलाभ, शत्रुस्थान से शत्रु की वृद्धि, कलत्रस्थान से मध्यम फल, मृत्युस्थान से मृत्यु, धर्मस्थान से धर्मवृद्धि, कर्म

रिपुर्मन्त्राद्यवर्णः स्यात्तेन तस्याऽहितं भवेत् ।
लग्नं धनं भ्रातृबन्धू * पुत्रशत्रू + कलत्रकम् ॥
मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादशराशयः ।
नामानुरूपमेतेषां शुभाशुभफलं लभेत् ॥
लग्ने सिद्धिस्तथा नित्यं धने धनसमृद्धिदम् ।
भ्रातरि भ्रातृवृद्धिः स्याद्बान्धवे बान्धवप्रियः ॥
पुत्रे च पुत्रवृद्धिः स्याच्छत्रौ शत्रुविवर्धनम् ।
कलत्रे मध्यमं प्रोक्तं मरणे मरणं भवेत् ॥

---

* वैष्णवमन्त्रे तु बन्धुस्थाने शत्रुस्थानमिति ।
+ वैष्णवे तु शत्रुस्थाने च बन्धुस्थानमिति पाठान्तरम् ।

स्थान से कार्यसिद्धि, आयस्थान से धन सम्पत्ति, और व्ययस्थान से सञ्चित धन का नाश हुआ करता है।

(नक्षत्रचक्र)

(२४) उत्तरसे दक्षिणओर को चार रेखा अङ्कित करके, उनके बीच पूर्व पश्चिम भाग में दश रेखा खैंचकर, उन सत्ताईस कोष्ठों में अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों को यथाक्रम से स्थापन करके अकारादि क्षकारपर्यन्त सब वर्णों को नियमपूर्वक स्थापन करना उचित है। प्रथम कोष्ठ में दो वर्ण, द्वितीय कोष्ठ में एक वर्ण, तृतीय कोष्ठ में तीन वर्ण, चतुर्थ में चार, पञ्चम में एक, षष्ठ में एक, सप्तम में दो, अष्टम में एक, नवम में दो, दशम में दो, एकादश में एक, द्वादश में दो, त्रयोदश में दो, चतुर्दश में दो, पञ्चदश में एक, षोडश में दो, सप्तदश में

धर्मे च धर्मवृद्धिःस्यात्सिद्धिदः कर्मसंस्थितः।
आये च धनसम्पत्तिर्व्यये च सञ्चितव्ययः॥

(२४) उत्तराद्दक्षिणाग्रां तु रेखां कुर्याच्चतुष्टयीम्।
दशरेखाः पश्चिमाग्राः कर्त्तव्या चक्रहेतवे॥
अश्विन्यादिक्रमेणैव विलिखेत्तारकाः पुनः।
अकारादिक्षकारान्तान्द्विचन्द्रवह्निवेदकान्॥
भूमीन्दुनेत्रचन्द्रांश्च अश्लेषान्तं खगौ मिये।
द्विभूनेत्रनेत्रयुग्मांश्चेन्दुनेत्राग्निधात्मकान्॥

तीन, अष्टादश में एक, ऊनविंशति में तीन, विंशति में एक, एकविंशति में एक, द्वाविंशति में एक, त्रयोविंशति में दो, चतुर्विंशति में एक, पञ्चविंशति में दो, षड्विंशति में तीन और सप्तविंशति में चार वर्ण स्थापित कियेजाते हैं।

पूर्व फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्र, उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्र, भरणी, आर्द्रा, और रोहिणी, इन नौ नक्षत्रों के मानुषगण हैं। ज्येष्ठा, शतभिषा, मूल, धनिष्ठा, अश्लेषा, कृत्तिका, चित्रा, मघा, और विशाखा इन ६ नौ नक्षत्रों के राक्षसगण हैं। अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण, इन नौ ६ नक्षत्रों के देवगण हैं।

मघादिकं च ज्येष्ठान्तं द्वितीयं नवतारकम्।
वह्निभूमीन्दुचन्द्रांश्च युग्मेन्दुनेत्रवह्निकान्॥
वेदेनभेदितान्वर्णान्नित्यन्तं गतान्क्रमात्।
पूर्वोत्तरत्रयं चैव भरण्यार्द्राऽथ रोहिणी।
इमानि मानुषाण्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिणः॥
ज्येष्ठाशतभिषामूलाधनिष्ठाश्लेषकृत्तिकाः।
चित्रामघाविशाखाः स्युस्तारा राक्षसदेवताः॥
अश्विनी रेवती पुष्या स्वाती हस्ता पुनर्वसूः।
अनुराधा मृगशिरः श्रवणा देवतारकाः॥

नक्षत्रचक्र ।

अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	अश्लेषा
अ आ	इ	ई उ ऊ	ऋ ॠ ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ औ	क	ख ग
देव	मानुष	राक्षस	मानुष	देव	मानुष	देव	देव	राक्षस
मघा	पूर्वाफाल्गुनी	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
घ ङ	च	छ ज	झ ञ	ट ठ	ड	ढ ण	त थ द	ध
राक्षस	मानुष	मानुष	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस
मूल	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	रेवती
न फ फ	ब	भ	म	य र	ल	व श	ष स ह	ल क्ष अं अः
राक्षस	मानुष	मानुष	देव	राक्षस	राक्षस	मानुष	मानुष	देव

स्वजाति में परम प्रीति, भिन्न जाति में मध्यम प्रीति, राक्षस और मनुष्य में विनाश, और राक्षस व देवता में शत्रुता जानना उचित है।

जन्मनक्षत्र और मन्त्र का आदि अक्षर जिस घर में आवेगा उस कोष्ठगत नक्षत्र के साथ मिलाकर गणना करना योग्य है। यदि मन्त्र और मन्त्रग्रहीता एक गण हो तो मन्त्र शुभदायी समझना उचित है और यदि शिष्य का मानुषगण हो और मन्त्र का देवगण हो तौभी वह मन्त्र मङ्गलदायी होता है। शत्रुताकारक और मृत्युकारक मन्त्र ग्रहण करने योग्य नहीं है। जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र और परम मित्र इस रूप से जन्मनक्षत्र से लेकर मन्त्रनक्षत्र पर्यन्त पुनः पुनः गणना करनेयोग्य है। यदि जन्मनक्षत्र से मन्त्रनक्षत्र जन्म, तृतीय पञ्चम अथवा सप्तम हो तो वह त्याग करनेयोग्य है, षष्ठ, अष्टम, द्वितीय, नवम और चतुर्थ मन्त्र शुभ-

---

स्वजातौ परमाप्रीतिर्मध्यमा भिन्नजातिषु।
रक्षोमानुषयोर्नाशो वैरं दानवदेवयोः॥
जन्मसम्पद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधको वधः।
मित्रं परममित्रं च जन्मादीनि पुनः पुनः॥
रसाष्टनवभद्राणि युग्म–युग्म–गतानि च।

दायी हुआ करते हैं । इन पांच स्थान के मन्त्रों से अतिरिक्त अन्य सब मन्त्र अशुभ समझने योग्य हैं, अतएव पण्डितगण जन्म आदि मन्त्र का त्याग करदेवें । जन्मनक्षत्र से मिलाकर पूर्व-कथितानुसार गणना करने से इस चक्र का उद्धार होता है ।

(अकथह चक्र)

(२५) पहले चार कोष्ठ जिसमें हों ऐसा एक चतुष्कोण कोष्ठ निर्माण करके, पुनः उसमें चार कोष्ठोंको बना कर इन षोड़श कोष्ठों में इस रीति से अकारादि वर्णों का विन्यास करना उचित है। प्रथम कोष्ठ में अ, तृतीय में आ, एकादशमें इ, नवम में ई, द्वितीय में उ, चतुर्थ में ऊ, द्वादश में ऋ, दशम में ॠ, षष्ठ में लृ, अष्टम में ॡ, षोड़श में ए, चतुर्दश में ऐ, पञ्चम में ओ, सप्तम में औ, पञ्चदश में अं, और त्रयोदश कोष्ठ में

इतराणि न भद्राणि तत्त्याज्यानि मनीषिणा ॥
प्रादक्षिण्येन गणयेत्साधकाद्यक्षरात्सुधीः ।
(२५) चतुरस्रं लिखेत्कोष्ठं चतुःकोष्ठसमन्वितम् ।
पुनश्चतुष्कं तत्राऽपि लिखेद्धीमान्क्रमेण तु ॥
ततः षोडशकोष्ठेषु लिखेद्वर्णान्यथाक्रमात् ।
इन्द्वग्निरुद्रनवनेत्रयुगार्कदिक्षु
ऋत्वष्टषोडशचतुर्दशभौतिकेषु ।
पातालपञ्चदशवह्निहिमांशुकोष्ठे

अः, इस प्रकार षोड़श कोष्ठों में षोड़श स्वर लिख-कर उसी नियम से ककारादि हपर्यन्त सब वर्ण उन कोष्ठों में लिखना चाहिये।

अकथह चक्र।

अ क थ ह	उ ङ प	आ ख द	ऊ च फ
ओ ड व	लृ झ म	औ ढ श	लॄ ञ य
ई घ न	ॠ ज भ	इ ग ध	ऋ छ ब
अः त स	ऐ ट ल	अं ण ष	ए ठ र

इस प्रकार चक्र निर्माण करके नाम के आदि अक्षर से लेकर मन्त्र के आदि अक्षर पर्यन्त वाम भाग से चारों कोष्ठों में तथा कोष्ठगत कोष्ठों में एक एक यथाक्रम से सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, और अरि, इन चारों भेदों का विचार करना उचित है।

वर्णांल्लिखेल्लिपिभवान्क्रमशस्तु धीमान् ॥
नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ।
चतुर्भिः कोष्ठैरेकैकमिति कोष्ठचतुष्टयम् ॥
पुनः कोष्ठगकोष्ठेषु सव्यतो नाम्न आदितः ।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः क्रमाज्ज्ञेयो विचक्षणैः ॥

सिद्धमन्त्र बांधव, साध्यमन्त्र सेवक, सुसिद्ध मन्त्र पोषक, और शत्रुमन्त्र घातक कहलाते हैं। सिद्धमन्त्र ग्रहण करने से मन्त्र समय पर सिद्ध हुआ करता है। साध्यमन्त्र ग्रहण करने से वह मन्त्र जप होम आदि द्वारा सिद्ध हुआ करता है। सुसिद्धमन्त्र ग्रहण करने से तत्क्षण में ही मन्त्र की सिद्धि होती है। और अरिमन्त्र ग्रहण करने से साधक का सर्व-नाश हुआ करताहै। सिद्ध-सिद्ध मन्त्र किञ्चित्काल में ही फलप्रद होता है, सिद्ध-साध्य मन्त्र उस से द्विगुण जप करने पर, और सिद्ध-सुसिद्ध अर्ध जप से फलप्रद होता है। सिद्ध-अरि मन्त्र के जप से बन्धुजनों का नाश होता है। साध्य-सिद्ध द्विगुण जप करने से फलदायी होता है। साध्य-साध्य मन्त्र का जप निष्फल होता है। साध्य-सुसिद्ध मन्त्र

सिद्धार्णा बान्धवाः प्रोक्ता साध्यास्तु सेवकाः स्मृताः।
सुसिद्धाः पोषका ज्ञेयाः शत्रवो घातकाः स्मृताः॥
सिद्धः सिद्ध्यति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः।
सुसिद्धो ग्रहणादेव रिपुर्मूलं निकृन्तति॥
सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्वैगुण्यात्सिद्धसाध्यकः।
सिद्धसुसिद्धोऽर्द्धजपात्सिद्धारिर्हन्ति बान्धवान्॥
साध्यसिद्धो द्विगुणकः साध्यसाध्यो निरर्थकः।

द्विगुण जप करने से फलदायी होता है। साध्य–अरि मन्त्र के जप से गोत्र के जन नष्ट होते हैं। सुसिद्ध–सिद्ध मन्त्र अर्ध जपसे फलदायी होता है। सुसिद्ध–साध्य मन्त्र द्विगुणसे अधिक जप करने से फलदायी होता है। सुसिद्ध–सुसिद्ध मन्त्र ग्रहणमात्र ही से फलदायी होताहै। सुसिद्ध–अरि मन्त्र का जप अपने गोत्रका नाशक होताहै। अरि–सिद्ध मन्त्र के जप से पुत्रनाश होता है। अरि–साध्य मन्त्र का जप कन्या का नाश करता है। अरि–सुसिद्ध का जप पत्नी का नाश करता है। अरि–अरि मन्त्र का जप साधक को नष्ट करता है। इसलिये अरि मन्त्र कदापि ग्रहण करना उचित नहीं है, यदि भ्रम से उसका ग्रहण होजाय तो बटपत्र पर उस मन्त्र को लिखकर किसी नदीके स्रोत में उस पत्रको बहादेना उचित है। इस प्रकार वैरिमन्त्र का त्याग हुआ करता है ऐसी विधि भगवान् महादेवजी ने कही है।

तत्सुसिद्धस्तु द्विगुणात्साध्यारिर्हन्ति गोत्रजान्॥
सुसिद्धसिद्धोऽर्धजपात्तत्साध्यो द्विगुणाधिकात्।
तत्सुसिद्धो ग्रहादेव सुसिद्धारिः स्वगोत्रहा॥
अरिसिद्धः सुतान्हन्यादरिसाध्यस्तु कन्यकाः।
तत्सुसिद्धस्तु पत्नीघ्नस्तदरिर्हन्ति साधकम्॥
वटपत्रे लिखित्वारिमन्त्रं स्रोतसि निक्षिपेत्।
एवं मन्त्रविमुक्तिः स्यादित्याह भगवाँञ्छिवः॥

(अकडम चक्र)

(२६) पूर्व पश्चिम भाग में दो रेखा अङ्कितकरके, उनके बीच उत्तर दक्षिण दिशा में और दो रेखा अङ्कित करना उचित है, तत्पश्चात् ईशानादि चारों कोणों में चार रेखा खींच कर एक राशि चक्र बनाया जाय। इस चक्र के बीच मेष आदि वृषपर्यन्त दक्षिणावर्त्त में अकारादि क्षकारान्त एक एक वर्ण लिखा जाय। केवल ऋ ॠ और ऌ ॡ यह चार क्लीव वर्ण छोड़ दिये जायँ।

अकडम चक्र।

---
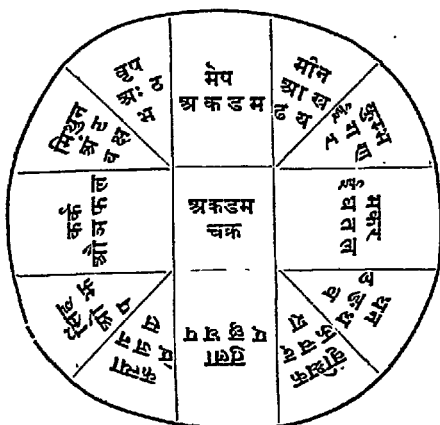
(२६) रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्यात्
तन्मध्यतो याम्यकुबेरभेदात्।

अकडम यह चार वर्ण मेषराशि के घर में आजायँगे । इस प्रकार से मेष से लेकर मीन कोष्ठपर्यन्त मिलाकर मन्त्रोद्धार करने की विधि है । साधक के नाम के आदि अक्षर से लेकर मन्त्रके आदि अक्षर पर्यन्त सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, और अरि मन्त्र की गणना की जाती है । नवम प्रथम और पञ्चम कोष्ठस्थित सिद्ध, षष्ठ, दशम, और द्वितीय में साध्य, तृतीय सप्तम और एकादश में सुसिद्ध और चतुर्थ अष्टम और द्वादश कोष्ठस्थित मन्त्र अरि समझने योग्य है । श्रीमहादेव आज्ञा करते हैं कि, हे देवि ! यही अकडम चक्र कहाता है ।

महेशरक्षोऽधिपतिक्रमेण
तिर्यक् तथा वायुहुताशनेन ॥
अकारादिक्षकारान्तान्क्लीवहीनाँल्लिखेत्ततः ।
एकैकक्रमतो लेख्यान्मेषादिषु हृपात्मकान् ॥
गणयेत्क्रमशो भद्रे ! नामादिवर्णपूर्वकान् ।
मेषादितश्च मीनान्तं गणयेत्क्रमशः सुधीः ॥
जप्तुः स्वनामतो मन्त्री यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ॥
सिद्धः साध्यः सुसिद्धारी पुनः सिद्धादयः पुनः ।
नवैकपञ्चमे सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मके ॥
सुसिद्धः त्र्यर्पिरुद्रे च वेदाष्टद्वादशे रिपुः ।
एतत्ते कथितं देवि ! अकडमादिकमुत्तमम् ॥

(ऋणधनिचक्र)

(२७) प्रथम एकादश कोष्ठ अङ्कित करके उन को चार कोष्ठ द्वारा पूर्ण करते हुए एक चक्र बनाया जाय। इस चक्र के प्रथम पञ्च कोष्ठों में एक ह्रस्व और एक दीर्घ इस रूप से दो दो, अकारादि दस स्वर वर्ण लिखे जाते हैं, तदनन्तर एकारादि स्वर वर्ण एवं क से ह पर्यन्त व्यञ्जन वर्ण सब एक एक कोष्ठ में क्रम से लिखे जाते हैं। इसके ऊपर की ओर ६,६,६,०,३,४,४,०,०,०, और ३ का साध्याङ्क लिखा जाताहै। एवं नीचे की ओर २,२,५,०,०,२,१,०,४,४, और एक का साधकाङ्क लिखा जाता॥

---

(२७) कोष्ठा एकादशोर्नेया वेदेन परिपूरिताः।
अकारादिहकारान्ताँल्लिखेत्कोष्ठेषु तत्त्ववित्॥
प्रथमं पञ्चकोष्ठेषु ह्रस्वदीर्घक्रमेण तु।
द्वयं द्वयं लिखेत्तत्र विचारेण तु साधकः॥
शेषेष्वेकैकशो वर्णान्क्रमशस्तु लिखेत्सुधीः॥

अपि च

द्वौ द्वौ स्वरौ पञ्चसु कोष्ठकेषु शेषान्स्वरान्षट्सु षडेकमेकम्।
कादीन्हशेषान्विलिखेत्ततोऽर्णानेकैकमेकादशसु त्रिकेषु॥
षट्–काल–काल–वियदग्नि–समुद्रवेद–
खाकाशशून्यदहनाः खलु साध्यवर्णाः।
युग्मद्विपञ्चवियदम्बरयुक्शशाङ्क–
व्योमाब्धिवेदशशिनः खलु साधकार्णाः॥

ऋणधनिचक्र ।

६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१

मन्त्र के स्वर और व्यञ्जन वर्ण सब पृथक् पृथक् रक्खे जायँ, इस प्रकार करने से जो जो वर्ण दृष्ट हों वह वह वर्ण इस चक्र के जिन जिन कोष्ठ में हों उन उन कोष्ठों के ऊपरके अङ्क लेकर एकसाथ योग करके युक्त अङ्क समूह को आठ से भाग देकर अवशिष्ट अङ्कों को एक स्थान पर रक्खा जाय। इस प्रकार से मन्त्र-ग्रहीताके नाम का स्वर और व्यञ्जन वर्णसमूह पृथक् पृथक् करके पूर्व कथनानुसार योग एवं भाग कर शेष

नामाज्झलादकठवाहृजभक्तशेषं
ज्ञात्वोभयोरधिकशेषमृणं धनं स्यात्।
मन्त्रो यद्यधिकाङ्कः स्यात्तदा मन्त्रं जपेत्सुधीः।

अङ्कसमूह ग्रहण किया जाय। इसमें विशेषता यह है कि चक्र के निम्नवर्त्ती अङ्कसमूह ग्रहण किये जाते हैं। तदनन्तर पूर्व स्थापित अङ्क और इस अङ्क समूह को लेकर विचार किया जाय। जो अङ्क अधिक हों सो ऋणी और जो अङ्क न्यून हो वह धनी समझने योग्य है। यदि मन्त्र ऋणी अर्थात् मन्त्राङ्क अधिक हो तो वह मन्त्र ग्रहण करने योग्य है। और यदि मन्त्र धनी अर्थात् मन्त्राङ्क न्यून हो तो वह मन्त्र ग्रहण न किया जाय। मन्त्राङ्क और नामाङ्क समान होने पर भी मन्त्र ग्रहण किया जासकता है। परन्तु उभयाङ्क शून्य होने पर उस मन्त्र द्वारा मृत्युकी प्राप्ति होती है इस कारण वह मन्त्र सदा त्याग करने योग्य है। सुप्त मनुष्य जिस नाम द्वारा पुकारने से जाग्रत् होजाया करताहै, दूर से जिस नाम को सुनकर उत्तर देता है, किसी वस्तु में चित्त लगे रहने पर भी जिस नाम पर बोला करता है उसी नाम के अनुसार इस ऋणी धनी चक्र की गणना करने की आज्ञा है। मूलमें जो "अकठ वात्" शब्द है वह चक्रके आदि कोष्ठक के आदि चारों अक्षरों का द्योतक है।

समेऽपि च जपेन्मन्त्रं न जपेत्तु ऋणाधिकम् ॥
शून्ये मृत्युं विजानीयात्तस्माच्छून्यं परित्यजेत् ॥
सुप्तो जागर्त्ति येनासौ दूरस्थः प्रतिभाषते ।
वदत्यन्यमनस्कोऽपि तन्नाम ग्राह्यमेव च ॥

उपास्यनिर्णयविधि ।

(२८) यह रूपात्मक सम्पूर्ण जगत् निराकार से उत्पन्न होता है, इस कारण साकार का ध्यान करनेसे मनुष्य तन्मय होजाया करता है । तत्त्व सेही समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, तत्त्व से सकल ब्रह्माण्ड का परिवर्त्तन और लय हुआ करता है तत्त्व से ब्रह्माण्ड का निर्णय होता है । सगुण उपासना के उपास्य-भूत देवता शिव, सूर्य, गणेश, विष्णु, और शक्ति, ये पांच यथाक्रम निर्णीत हैं । पञ्च तत्त्व विचार के अनु-सार पांच प्रकार की उपासना सूक्ष्मार्थदर्शीमहर्षियों ने कही है । यह उपासनाभेद वेद और युक्ति-विचार द्वारा सर्व कल्याणकारक सिद्ध होता है । आज कल

---

(२८) निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।
तत्साकारं समाश्रित्य ध्याने भवति तन्मयः ॥
तत्त्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्त्तते ।
तत्त्वेन लीयते सर्वं तत्त्वाद् ब्रह्माण्डनिर्णयः ॥
शिवः सूर्यो गणेशश्च विष्णुः शक्तिर्यथाक्रमम् ।
सगुणोपासनायाश्च देवताः पञ्च कीर्त्तिताः ॥
उपासनानां पञ्चानां पञ्चतत्त्वविवेकतः ।
निर्णयो मुनिभिः पूर्वं कृतः सूक्ष्मार्थदर्शिभिः ॥
वेदप्रमाणतश्चैव तथा युक्तिविचारतः ।
सिद्धः स सर्वथा देवि ! सर्वकल्याणकारकः ॥

के साम्प्रदायिक आचार्यों में जो परस्पर विरोध देखने में आता है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि अज्ञान से समुत्पन्न यह विरोध दुर्गति का कारण है।

(पञ्चदेवविज्ञान)

(२६) जो पुरुष प्रकृति से अतीत और पचीसवां तत्त्व है, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसके अधीन है उसको नारायण कहते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणी और समस्त पदार्थों को उत्पन्न करता है और जगत् को पवित्र करताहै इस कारण उसे सविता कहते हैं। जो इस ब्रह्माण्ड का मूलस्वरूप है, जिसको देवतागण पूजा किया करते हैं, जो जगत् की ईश्वरी है इस कारण उसे महेश्वरी कहते हैं। जो त्रिगुण का स्वामी है, तत्त्वातीत, अव्यक्त और नितान्त निर्मलहै और जो गणों का प्रभु है अतः वह गणपति कहाजाता है।

विरोधो दृश्यते योऽसौ सम्प्रदायवतामिह।
अज्ञानजोऽयं हेतुर्वै दुर्गतेर्नाऽत्रसंशयः॥

(२६) प्रकृतेः पर एवान्यः स नरः पञ्चविंशकः।
तस्येमानि च भूतानि तेन नारायणः स्मृतः॥
सविता सर्वभूतानां सर्वान्भावान्प्रसूयते।
सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥
ब्रह्माण्डमूलभूता या पूजिता देवतागणैः।
ईशनात्सर्वलोकस्य मता सा वै महेश्वरी॥
गुणत्रयेश्वरोऽतीततत्त्वोऽव्यक्तः सुनिर्मलः।
गणानामीश्वरो यस्मात्तस्माद्गणपतिर्मतः॥

ब्रह्मादिक देवतागण, मुनि और ब्रह्मवादियों में जो सब से महान् है उस देव को महादेव कहते हैं। इस प्रकार एक ही परमात्मा परब्रह्म के पञ्चदेव रूप पांच भेद पूज्यपाद महर्षियों ने किये हैं।

(अधिकारनिर्णय)

(३०) सृष्टि पाञ्चभौतिक है इस कारण मनुष्य-प्रकृति भी पांच प्रकार की होती है। यद्यपि प्राकृतिक वैचित्र्य के कारण सब मनुष्यों की प्रकृति में कुछ न कुछ भेद रहता है परन्तु आकाश आदि पञ्चतत्त्व के अनुसार प्रत्येक तत्त्व की अधिकता के विचार से मनुष्यके उपासनाधिकार को तन्त्रज्ञ महर्षियों ने पांच भेद में वर्णन किया है। पञ्चोपासना के निर्णय के विचार में पञ्चोपासना का अधिकार निर्णय इसी

ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्।
तेषां महत्त्वाद्देवोऽयं महादेवः प्रकीर्त्तितः॥
देवपञ्चकमित्याहुरेकं देवं सुधीवराः।
एकमेव परंब्रह्म परमात्मपराभिधम्॥

(३०) मानवानां प्रकृतयः पञ्चधा परिकीर्त्तिताः।
यतो निरूप्यते सर्गः पञ्चभूतात्मको बुधैः॥
भिन्ना यद्यपि भूतानां प्रकृतिः प्रकृतेर्वशात्।
तथापि पञ्चतत्त्वानामनुसारेण तन्त्रवित्॥
प्रत्येकतत्त्वप्राचुर्यं विमृश्य विधिपूर्वकम्।
उपासनाधिकारस्य पञ्चभेदमवर्णयत्॥

प्रकार से हुआ करता है। आकाश का अधिपति विष्णु, अग्नि की अधिपति महेश्वरी, वायु का सूर्य, पृथिवी का शिव, और जल का गणेश हैं। योग में निष्णात गुरुदेव शिष्य की पञ्चधा-प्रकृति-निर्णय-पूर्वक उसके उपासनाधिकार का निर्णय कर देवें। ऋतम्भरा बुद्धि, स्वरोदय, ज्यौतिष, इन तीनों की सहायता से उपासनाधिकारनिर्णय किया जासकता है। पञ्चोपासना के अनुसार उपासनाधिकारनिर्णय होने के अनन्तर शिष्य के आन्तरिक भावों की परीक्षाद्वारा और उसके चित्तसंवेग, वैराग्य, धारणा, आदि के निर्णय द्वारा प्रकृति के अनुसार उसके सम्प्रदाय व रूप विशेष के निर्णय करने से शिष्य का कल्याण हुआ करता है।

उपासनाः पञ्चविधा इत्थं निर्णीयते स्फुटम् ॥
आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चाऽपि महेश्वरी ।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥
गुरवो योगनिष्णाताः प्रकृतिं पञ्चधा गताम् ।
परीक्ष्य कुर्युः शिष्याणामधिकारविनिर्णयम् ॥
ऋतम्भरधिया ज्योतिः स्वरोदयसहायतः ।
उपासनाधिकारो वै निर्णेतुं शक्यते ध्रुवम् ॥
चित्तसंवेगवैराग्यधारणादिविनिर्णयम् ।
परीक्ष्य चाऽस्यान्तरिकान्भावाञ्छिष्यस्य योगवित् ॥
तत्सम्प्रदायनियमं तेषां प्रकृतिसन्निभम् ।
करोति जीवकल्याणकल्पनाकलितान्तरः ॥

मन्त्रयोगाङ्गवर्णन।

(३१) मन्त्रयोग सोलह अङ्गों से सुशोभित है, जैसे चन्द्रमा सोलह कलाओं से सुशोभित है। भक्ति, शुद्धि, आसन, पञ्चाङ्गसेवन, आचार, धारणा, दिव्य-देशसेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, वलि, याग, जप, ध्यान, और समाधि, मन्त्रयोग के ये षोड़श अङ्ग हैं। भक्ति के तीन भेद हैं, और अधिकार के भेद से और उपासना के तारतम्य से त्रिगुण के अनुसार उसके अधिकार भी तीन हैं।

शुद्धि के चार भेद हैं। आसन के दो भेद हैं। गीता स्तोत्र आदि पांचों के सेवन से पञ्चाङ्ग कहाता है। आचार के तीन भेद होने पर भी साधक के अधि-

(३१) भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम्।
यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोडश शोभनाः॥
भक्तिः शुद्धिश्चासनं च पञ्चाङ्गस्याऽपि सेवनम्।
आचारधारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि॥
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं वलिः।
यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडश॥
भक्तेर्भेदास्त्रयो ज्ञेयाश्चाधिकारस्य भेदतः।
त्रैगुण्यभेदात्रिविधोऽधिकारोऽस्याः प्रकीर्त्तितः॥
शुद्धिश्चतुर्विधा प्रोक्ता चाऽऽसनं द्विविधं स्मृतम्।
पञ्चाङ्गसेवनं गीतास्तोत्रपाठादिकं मतम्॥
आचारस्त्रिविधः प्रोक्तोऽधिकारास्तस्य सप्त वै।

कार सात माने गये हैं। बाह्य और आन्तर भेद से धारणा के दो भेद हैं। दिव्यदेश सेवन के सोलह भेद हैं। उन्हीं में स्वभावतः इष्टदेवों का आविर्भाव हुआ करता है। प्राणक्रिया एकही है, परन्तु न्यासादिक उसी के अङ्गभूत हैं। मुद्रा अनेकभावप्रद होने के कारण बहुत हैं। तर्पण, हवन, और बलि, देवता के प्रीतिमूलक हैं। बाह्य और आन्तर भेद से यज्ञ के दो भेद हैं। उपचार भेद से पूजा की कल्पना और श्रद्धा के भेद से पूजा के भेद निर्णीत होते हैं। जप त्रिविध है। पञ्चोपासना के भेद से ध्यान अनेक होने पर भी समाधि एकही होती है। मन्त्रयोग समाधि को महाभाव कहते हैं।

धारणा द्विविधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः॥
षोडशाङ्गं विनिर्दिष्टं दिव्यदेशस्य सेवनम्।
आविर्भवन्तीष्टदेवा अत्रैवाशु स्वभावतः॥
यदङ्गभूता न्यासाद्याः सैका प्राणक्रिया मता।
भावबाहुल्यवत्त्वाद्धि बह्वयो मुद्राः प्रकीर्त्तिताः॥
देवानां प्रीतिकृज्ज्ञेयं तर्पणं हवनं बलिः।
बाह्याभ्यन्तर भेदेनयज्ञभेदो द्विधा मतः॥
श्रद्धोपचारभेदेन पूजाया भेदकल्पना।
जपस्य हि त्रयो भेदा ध्यानं बहुविधं मतम्॥
परं समाधिरेकः स्यान्महाभावेतिनामकः॥

भक्तिवर्णन।

(३२) भक्ति के तीन भेद हैं, यथा—वैधी भक्ति, रागात्मिका भक्ति; और पराभक्ति। अपने इष्टदेव में ऐकान्तिक अनुराग को धीर पुरुष भक्ति कहते हैं। विधि निषेध द्वारा निर्णीत और साध्यमाना भक्ति को वैधी कहते हैं। भक्तिरस का आस्वादन कराकर साधक को भाव विशेष में निमग्न करानेवाली भक्ति रागात्मिका कही जाती है। और परमानन्दप्रदा भक्ति पराभक्ति कहाती है, जो योग में कुशल योगिगण को समाधि दशा में प्राप्त होती है। भक्त त्रिगुण भेद से त्रिविध होते हैं। यथा—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, और चतुर्थ ज्ञानी, जो त्रिगुणातीत है।

---

(३२) भक्तिस्तु त्रिविधा ज्ञेया वैधी रागात्मिका परा।
देवे परोऽनुरागस्तु भक्तिः सम्प्रोच्यते बुधैः॥
विधिना या विनिर्णीता निषेधेन तथा पुनः।
साध्यमाना च या धीरैः सा वैधी भक्तिरुच्यते॥
ययाऽऽस्वाद्य रसान्भक्तेर्भावे मज्जति साधकः।
रागात्मिका सा कथिता भक्तियोगविशारदैः॥
पराऽऽनन्दप्रदा भक्तिः पराभक्तिर्मता बुधैः।
या प्राप्यते समाधिस्थैर्योगिभिर्योगपारगैः॥
त्रैगुण्यभेदात्त्रिविधा भक्ता वै परिकीर्त्तिताः।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी तथा त्रिगुणतः परः।

ज्ञानी भक्तही परा भक्ति का अधिकारी होसक्ता है। त्रिगुण भेद से उपासक तीन प्रकार के होते हैं। ब्रह्मोपासक सब में श्रेष्ठ है, ऐसा विद्वज्जनों ने कहा है। ब्रह्मबुद्धि से सगुणोपासक और ब्रह्मबुद्धि से अवतारोपासक इसी श्रेणि में हैं। सकाम बुद्धि से ऋषि देवता और पितरों की उपासना करनेवाले द्वितीय श्रेणि के हैं। और क्षुद्र शक्तियों की उपासना करनेवाले तृतीय श्रेणि के हैं। उपदेवता प्रेतादिक की उपासना इसी निम्न श्रेणि की समझी जाती है। प्रथम श्रेणि की उपासना अर्थात् ब्रह्मोपासनाही परम कल्याणप्रद और निःश्रेयसकर होने के कारण सर्व श्रेष्ठ जानने योग्य है।

पराभक्त्यधिकारी यो ज्ञानिभक्तः स तुर्यकः ॥
उपासकाः स्युस्त्रिविधास्त्रिगुणस्याऽनुसारतः ।
ब्रह्मोपासक एवाऽत्र श्रेष्ठः प्रोक्तो मनीषिभिः ॥
सगुणोपासना या स्यादवतारप्रपूजनम् ।
विहिता ब्रह्मबुद्ध्या चेदत्रैवान्तर्भवन्ति ताः ॥
सकामबुद्ध्या विहितं देवर्षिपितृपूजनम् ।
द्वितीयश्रेणिका ज्ञेयास्तत्कर्त्तारस्तथा पुनः ॥
तृतीयश्रेणिकास्ते स्युः क्षुद्रशक्तिसमर्चकाः ।
प्रेताद्युपासनं चैव निम्नश्रेणिकमुच्यते ॥
ब्रह्मोपासनमेवाऽत्र मुख्यं परममङ्गलम् ।
निःश्रेयसकरं ज्ञेयं सर्वश्रेष्ठं शुभावहम् ॥

शुद्धिवर्णन ।

(३३) शुद्धि के शरीर, मन, दिक्, और स्थान के भेद से चार भेद हैं । वेही स्थानशुद्धि, दिक्शुद्धि, वाह्यशुद्धि, और आभ्यन्तर शुद्धि कहे जाते हैं । स्थानशुद्धि से पवित्रतावृद्धि, और पुण्यवृद्धि होती है । दिक्शुद्धि से शक्ति की प्राप्ति होती है । वाह्यशुद्धि से आत्मप्रसाद और इष्टदेव की कृपा उपलब्ध होती है । और अन्तःशुद्धि द्वारा इष्टदेव का दर्शन और समाधि की प्राप्ति होती है । योगी को इन चारों शुद्धियों का विचार अवश्य करना उचित है ।

(दिक्शुद्धि)

(३४) पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख बैठकर नित्य

---

(३३) कायचित्तदिशास्थानभेदाच्छुद्धिश्चतुर्विधा ।

यद्वा

स्थानशुद्धिश्च दिक्शुद्धिर्वाह्यशुद्धिस्तथैव च ।
अन्तःशुद्धिरिति प्रोक्तास्ताश्चतस्रो यथाक्रमम् ॥
स्थानशुद्ध्या पुण्यवृद्धिः पावित्र्यं च प्रजायते ।
दिक्शुद्ध्या शक्त्यधिगमो वाह्यशुद्ध्यात्महृष्टता ॥
इष्टदेवकृपाप्राप्तिश्चान्तःशुद्ध्येष्टदर्शनम् ।
समाधिसिद्धिर्भवति योगी शुद्धीः समाचरेत् ॥

(३४) आसीनः प्राङ्मुखो नित्यं जपं कुर्याद्यथाविधि ।

यथाविधि जप करे, और रात्रि को उत्तरमुख बठकर दैवकार्य सदा करे। दिक्शुद्धि द्वारा साधक को साधन में सिद्धि की प्राप्ति होती है, और साधक का मन वशीभूत होता है। इस कारण सावधान योगी को सदा दिक्शुद्धि का विचार रखना उचित है।

(स्थानशुद्धि)

(३५) जिस प्रकार गङ्गाजल से शरीर की शुद्धि हुआ करती है, इसी प्रकार गोमय से स्थान की शुद्धि करने योग्य है। और पञ्चशाखायुक्त स्थान अर्थात् अश्वत्थ, वट, विल्व, आमलकी, और अशोक, यह पञ्चवृक्षयुक्त पञ्चवटी के नीचे का स्थान सिद्धियों का देनेवाला है। गोशाला, गुरुगृह, देवायतन, अर्थात् देवमन्दिर, वनस्थान, तीर्थादि पुण्यक्षेत्र, और नदी-तीर, यह स्थानसमूह सदा पवित्र समझे जाते हैं।

रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्दैवकार्यं सदैव हि ॥ *
दिक्शुद्ध्या साधकः सिद्धिं साधने लभतेऽञ्जसा।
मनश्च वश्यतां यातीत्यतः कार्या प्रयत्नतः ॥

(३५) गोमयेन यथा स्थानं कायो गङ्गोदकेन च।
पञ्चशाखायुतो देशस्तथा सिद्धिप्रदायकः ॥
गोशाला वै गुरोर्गेहं देवायतनकाननम्।
पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं सदा पूतं प्रकीर्त्तितम् ॥

* प्रागाननो धनददिग्वदनोऽथवाऽपि ... ...
बद्धासनो गणपतिं च गुरुञ्च नत्वा। ... ...
इति नागभट्टः।

(काय-शुद्धि)

(३६) साधन क्रिया के अर्थ मनुष्यों को स्नान कर्म सब से प्रथम कार्य है, और ऐसेही वेद और धर्मशास्त्रों ने आज्ञा दी है । इस स्नानक्रिया में और भी विशेषता यह है कि, इसके द्वारा सौन्दर्य और पुष्टि की वृद्धि होती है, और शरीर को आरोग्य की प्राप्ति होती है । स्नान सात प्रकार का होता है यथा— मान्त्रस्नान, भौमस्नान, आग्नेयस्नान, वायव्य-स्नान, दिव्यस्नान, वारुणस्नान, और मानसस्नान। "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्र और जल आदि से जो स्नान किया जाता है, उसको मान्त्र स्नान कहते हैं। शरीर को वस्त्र से भली प्रकार पोंछने को भौम स्नान कहते हैं । भस्म धारण करने से आग्नेयस्नान कहा जाता है । गोरज को शरीर पर लेपन अथवा शरीर में उसका स्पर्श वायव्य कहाता है । वृष्टिपात होते समय यदि सूर्य का आतप हो तो उस समय

---

(३६) स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम् ।
तस्मात्स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्द्धनम् ॥
मान्त्रं भौमं तथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं मानसं चैव सप्तस्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥
आपोहिष्ठादिभिर्मान्त्रं भौमं देहप्रमार्जनम् ।
आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥
यत्तदातपवर्षेण स्नानं दिव्यमिहोच्यते ।

वृष्टिजल में स्नान करने से दिव्यस्नान कहाता है। जल आदि में डूबकर स्नान करने से वारुण स्नान कहाता है। और श्रीभगवान् के चिन्तन से मानसस्नान हुआ करता है। अनन्त सूर्यों की समान प्रभायुक्त, वामदेव, चतुर्भुज, शंख चक्र गदा पद्म मुकुटधारी, शेषशायी, सत्त्वगुणमय ऐसे श्रीभगवान् के रूपका ध्यानही मानसस्नान है। अपनी अपनी शाखा में कहे हुए स्नान शास्त्रविधि के अनुसार करना उचित है, जिसके द्वारा शरीर का मल दूर होजाय। दूर्वा, तिल, और जल से संयुक्त ताम्रपात्र लेकर अपने इष्टदेव की प्रीति के लिये स्नान करना चाहिये। प्रथम गुरुपंक्ति का तर्पण करके इष्ट देवता का तर्पण करे, इस प्रकार यथाविधि नित्यही साधक को मान्त्रस्नान करना उचित है।

वारुणं चावगाहःस्यान्मानसं विष्णुचिन्तनम् ॥
अनन्तादित्यसङ्काशं वामदेवं चतुर्भुजम् ।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-मुकुटं शेषशायिनम् ॥
प्रभूतसत्त्वसम्पन्नं ध्यायेन्नारायणं विभुम् ।
अथ स्नानं प्रकुर्वीत यथा शास्त्रविधिः स्मृतः ॥
मलप्रक्षालनं स्नानं स्वशाखोक्तं समाचरेत् ॥
ताम्रपात्रं सदूर्वं च सतिलं सजलं तथा ।
गृहीत्वा स्वेष्टदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत् ॥
गुरुपङ्क्तिं तु सन्तर्प्य तर्पयेदिष्टदेवताम् ।
मान्त्रं स्नानं साधको वै नित्यं कुर्याद्यथाविधि ॥

(अन्तःशुद्धि)

(३७) भयशून्यता, चित्तप्रसन्नता, ज्ञानयोग अर्थात् आत्मज्ञान लाभ करने के उपायों में तीव्र निष्ठा, दान, इन्द्रियसंयम, यज्ञ, वेद और वेदसम्मत शास्त्रों का पाठ करना, तप, सरलता वृत्ति, अहिंसा अर्थात् जीवों की रक्षा करने में प्रवृत्ति, सत्य, अक्रोध, कर्म के फल में अनासक्ति, चित्तकी शान्ति, खलवृत्तियोंका परित्याग, सब भूतोंपर दया, लोभका त्याग करना, अहङ्कारका त्याग करना, कुकर्म करनेमें लज्जा आना, चञ्चलताका त्याग, तेज, क्षमा, अर्थात् दोषीको दण्ड देनेमें समर्थ होने परभी उसके दोषोंकी उपेक्षा करना, धैर्य, शौच, सब से निर्विरोध रहना, और नाऽतिमानिता अर्थात् 'मैं पूज्यहूँ' 'मैं ऐसा योग्यहूँ' इत्यादि अभिमानसम्बन्धी भावोंका त्याग करना, यह सब दैवी सम्पत्ति कहाती है, और इन सब वृत्तियोंके अभ्यास द्वारा अन्तःकरण निर्मल हुआ करता है।

---

(३७) अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वगृध्नुत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नाऽतिमानिता।
भवन्ति सम्पदो दैव्यश्चित्तनैर्मल्यकारणम्॥

दम्भ अर्थात् 'मैं धार्मिक हूँ' इस प्रकार का अभिमान, दर्प अर्थात् मैं, धनीहूँ' इस प्रकार का अहङ्कार भाव, अभिमान अर्थात् 'मैं पूजनीय हूँ' इस प्रकार का अहन्त्वभाव, क्रोध, पारुष्य अर्थात् निष्ठुरता, अविवेक अर्थात् विचारपूर्वक काम न करना, इत्यादि आसुरी सम्पत् जानने योग्य है। पूर्व कथित दैवी सम्पत् मोक्ष का कारण है। और आसुरी सम्पत् जीव के वन्धन का हेतु है। इस कारण बुद्धिमानों को उचित है कि वे सदा दैवी सम्पदों का अभ्यास करके मोक्षपथ में अग्रसर हुआ करें।

आसन-वर्णन।

(३८)मन्त्रयोगमें हितप्रद होनेके कारण प्रधानतः दो आसन लियेगये हैं, यथा स्वस्तिक, और पद्मासन। आसन भेद, आसनशुद्धि, और आसन क्रिया, इन तीनों के द्वारा आसनशुद्धि होती है। आसन पदार्थ

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाऽभिजातस्य विद्यात्सम्पदमासुरीम्॥
दैवी सम्पद्विमोक्षाय निवन्धायासुरी मता।
दैवीं सम्पत्तिमासाद्य निस्त्रैगुण्यो भवेत्सुधीः॥

(३८) प्रधानतो मन्त्रयोग आसने द्वे हितप्रदे।
पद्मं च स्वस्तिकं चैव तथा तच्छुद्धिरुच्यते॥
भेद-शुद्धि-क्रियाभ्यासादासनं शुद्ध्यति ध्रुवम्।
यत्रास्यते साधकेन भेदास्तस्य पृथक् पृथक्।

कि जिसपर साधक बैठे, उस के अनेक भेद वेद और तन्त्रों में मुनिवर्यों से प्रकाशित हैं। सकाम निष्काम विचार, उपासनापद्धति, और कामनाके तारतम्य से आसनभेद निर्णीत हुए हैं। धारणाशुद्धि और मन्त्रोच्चारणद्वारा आसनशुद्धि कीजाती है, आसन कर्मकांड, और उपासनाकाण्ड के विभिन्नभेद द्वारा विभिन्न प्रकार से उक्त दोनों काण्डों में निर्णीत हुए हैं। और आसनक्रिया का विज्ञान हठयोगतत्त्वज्ञ परात्मद्रष्टा प्राचीन योगियों ने विधिपूर्वक निर्णीत किया है। आसन की सिद्धि योगियों के लिये परम कल्याणप्रद है।

(आसनभेद)

(३६) पट्टवस्त्र, कम्बल, कुशनिर्मित, सिंहचर्म,

वेदेषु तन्त्रेषु तथा कथिता मुनिपुङ्गवैः ॥
सकामाकामभेदेनोपासनायाश्च भेदतः ।
कामनातारतम्याच्च निर्णीतान्यासनानि वै ॥
धारणाशुद्धितो मन्त्रोच्चारणादपि शुद्ध्यति ।
आसनं तच्च द्विविधं कर्मोपासनभेदतः ॥
बहुशो वर्णितं कर्मोपासनाकाण्डयोः स्फुटम् ।
निर्णीतमासनविधेर्विज्ञानं विधिपूर्वकम् ॥
परात्मदर्शिभिः पूर्वैर्हठयोगविशारदैः ।
योगिनां श्रेयसे सिद्धिरासनस्य प्रकीर्त्तिता ॥
(३६) सुचैलं काम्बलं कौशं सिंहव्याघ्रमृगाजिनम् ।

व्याघ्रचर्म, और मृगचर्म के आसन अतिशुद्ध कहाते हैं, और ये सबही सिद्धि फल के देनेवाले हैं। काम्य कर्म के अर्थ कम्बलासन श्रेष्ठ है, परन्तु रक्त कम्बल निर्मित आसनही सबसे उत्तम समझा जाता है। कृष्णाजिन, अर्थात् काले मृग के चर्म के आसन से ज्ञान की सिद्धि, व्याघ्रचर्म से मोक्ष की सिद्धि, कुशासन से आयु की प्राप्ति, और चैल अर्थात् रेशम के आसन से व्याधि का नाश हुआ करता है, और प्रथम चैल, उसके नीचे अजिन, और सबसे नीचे कुशासन, इस प्रकार यथाक्रम से आसन निर्माण करने से योग साधन में सिद्धि की प्राप्ति होती है।

अब दुःखदायी अर्थात् निषिद्ध आसनों का वर्णन किया जाता है। पृथिवी को आसन बनाने से दुःख की प्राप्ति, काष्ठासन से दुर्भाग्य का उदय, वंशनिर्मित आसन से दरिद्रता की प्राप्ति, पाषाणनिर्मित आसन

एतेषामासनं शुद्धं सिद्धये वै फलाय च ॥
काम्यार्थे कम्बलं चैव श्रेष्ठं च रक्तकम्बलम् ।
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षः स्याद्व्याघ्रचर्मणि ॥
कुशासने भवेदायुश्चैलं व्याधिविनाशनम् ।
योगसिद्धिप्रदाने तु चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने ।
वंशासने दरिद्रः स्यात्पाषाणे व्याधिपीडनम् ॥

से व्याधि की उत्पत्ति, तृण के आसन से यश की हानि, पल्लव के आसन से चित्तविभ्रम की प्राप्ति, और वस्त्रनिर्मित आसन से जप, ध्यान और तप की हानि हुआ करती है इस कारण ये सब आसन निषिद्ध हैं। सिंहचर्म, व्याघ्रचर्म, और कृष्णसारचर्म पर गुरुदीक्षा विहीन गृही को कदापि बैठना उचित नहीं है। ऐसे आसनों पर गृहस्थगण केवल गुरु आज्ञा पानेसेही बैठ सकते हैं। परन्तु स्नातक ब्रह्मचारिगण को इन आसनों पर उदासीन के समान बैठना चाहिये। उचित आसन पर बैठकर पृथ्वी इस मन्त्र के ऋषि का नाम उच्चारणपूर्वक, यथा—मेरुपृष्ठ आदि क्रम से छन्द आदि का उच्चारणकर आसने विनियोगः द्वारा आसन की शुद्धि करके सुखपूर्वक बैठकर जप पूजा आदि करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है, और अन्यथा करने से साधन कार्य निष्फल हुआ करता है।

तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।
जपध्यानतपोहानिर्वसनासनतो भवेत् ॥
नादीक्षितो विशेज्जातु सिंहव्याघ्राजिने गृही ।
उदासीनवदास्येत स्नातकब्रह्मचारिभिः ॥
पृथिवीमन्त्रस्य च ऋषिर्मेरुपृष्ठ उदाहृतः ।
सुतलं च तथाच्छन्दः कूर्मो देवोऽस्य कीर्त्तितः ॥
आसने विनियोगः स्यादासने सुखदे विशेत् ।
जपार्चनादिकं कुर्यादन्यथा निष्फलं भवेत् ॥

पञ्चाङ्गसेवनवर्णन।

(४०) गीता, सहस्रनाम, स्तव, कवच, और हृदय, इन्हें विद्वानों ने पञ्चाङ्ग कहा है। स्वस्व उपासना सम्प्रदाय के अनुसार गीता, और स्वस्व पद्धति के अनुसार सहस्रनाम, स्तव, कवच, और हृदय के प्रतिदिन पाठ करने से योगी कल्मषरहित होता हुआ योगसिद्धि को प्राप्त करता है। पञ्चोपासना के अनुसार गीता पांच हैं-यथा-भगवद्गीता, गणेशगीता, भगवतीगीता, सूर्यगीता, और शिवगीता,। इसी प्रकार सहस्रनाम भी पृथक्२ पांचहैं। और अनेक पद्धति के अनुसार स्वस्व उपासना मूलक स्तव, कवच, और हृदय, अनेक हैं, सो साधक को श्रीगुरुदेवोपदेश द्वारा

(४०) गीतासहस्रनामानि स्तवः कवचमेव च।
हृदयं चेति पञ्चैते पञ्चाङ्गं प्रोच्यते बुधैः॥
स्वोपासनानुसारेण गीतायाः पठनाद्ध्रुवम्।
सहस्रनामाध्ययनात्स्वपद्धत्यनुसारतः॥
स्तोत्रस्य कवचस्याऽपि हृदयस्य च पाठतः।
योगसिद्धिमवाप्नोति योगी विगतकल्मषः॥
गीता पञ्चविधा प्रोक्ता पञ्चोपासनभेदतः।
भगवत्सूर्यशक्तीनां गणेशस्य शिवस्य च॥
तथा सहस्रनामाद्या विविधाः परिकीर्त्तिताः।

प्राप्त करने योग्य हैं। सब गीताओं में जगज्जन्मादि कारण विचार से एक अद्वितीय ब्रह्म के विचित्र भावमय विज्ञान का वर्णन किया है, क्योंकि पञ्चोपासना ब्रह्मोपासनाही है।

आचार-वर्णन।

(४१) साधकों के अर्थ त्रिविध आचारवर्णन आचार्यों ने किया है। यथाः—दिव्य, दक्षिण, और वाम। और साधक के अधिकार सात कहे गये हैं यथा—दीक्षा, महादीक्षा, पुरश्चरण, महापुरश्चरण, अभिषेक, महाभिषेक, और तद्भाव। इन अधिकारों के द्वारा साधक मुक्तिपद को उपलब्ध करसकता है इसमें

अनेकोपासनाभेदाद्विज्ञेया गुरुदेवतः ॥
गीतासु वर्णितं ह्येकं जगज्जन्मादिकारणम् ।
विचित्रभावशवलं विज्ञानं ब्रह्मणः स्फुटम् ॥
ब्रह्मोपासनतां यान्ति यतः पञ्चाऽप्युपासनाः ॥

(४१) आचारस्त्रिविधः प्रोक्तः साधकानां मनीषिभिः ।
दिव्यदक्षिणवामाश्चाधिकाराः सप्त कीर्त्तिताः ॥
सप्ताधिकारा विदुषः साधकस्य मता इमे ।
दीक्षा ततो महादीक्षा पुरश्चरणमेव च ॥
ततो महापुरश्चर्याऽभिषेकस्तदनन्तरम् ।
षष्ठो महाभिषेकश्च तद्भावोऽन्तिम ईरितः ॥
साधकोऽनेन लभते मोक्षं नाऽस्तीह संशयः ॥

सन्देह नहीं। साधक के इन सात अधिकारों के नाम तन्त्रादिशास्त्रों में दिव्य, दक्षिण, और वाम आचारों के अनुसार बहुप्रकार के हैं जो स्वस्व सम्प्रदाय में व्यवहृत होतेहैं। दक्षिण और वाम आचार एक दूसरे से विरुद्ध हैं। दोनों का लक्ष्य निवृत्तिमूलक होने पर भी एक प्रवृत्तिपर और दूसरा निवृत्तिपर है। मनुष्यों में प्रवृत्ति स्वाभाविकी है, किन्तु निवृत्ति महाफल देनेवाली है. इस कारण उपासना में भी दोनों आचारों का वर्णन देखने में आता है। आचार उपासना के अन्तर्भावों का परिचायक और त्रिविध शुद्धि-परिचायकहै ऐसा विद्वज्जनोंने कहाहै। स्वस्व आचार के भेद श्रीगुरुमुख से जान लेने योग्यहैं। जिस आचार में निवृत्तिमार्ग के पूर्णाधिकारी गण स्वभावतः रत

एषां सप्ताधिकाराणां नामानि विविधानि वै।
तन्त्रादिशास्त्रे कथितान्याचारस्याऽनुसारतः॥
परस्परं विप्रतीपावाचारौ वामदक्षिणौ।
द्वयोरभिन्नलक्ष्यत्वेऽप्येकः प्रवृत्तिनिष्ठितः॥
निवृत्तिनिष्ठो ह्यपरः प्रवृत्तिर्हि निसर्गजा।
महाफला निवृत्तिस्तु विज्ञेया वेदवादिभिः॥
अतो ह्युपासनायां वै आचारो द्विविधो मतः।
उपासनान्तर्भावा वै त्रिविधाश्चाऽपि शुद्धयः॥
आचारैः परिचीयन्ते मोक्षमेतन्मनीषिभिः॥
स्वाचारभेदा विज्ञेया गुरुदेवोपदेशतः।
निवृत्तिमार्गपथिका रता यत्र निसर्गतः॥

होते हैं। दिव्याचार वह है जो पूर्वोक्त दोनों आचारों से तृतीय है। वाम और दक्षिण दोनों आचार परस्पर विरुद्ध हैं, परन्तु दिव्याचार दोनों से अविरुद्ध और सर्वजीवहितकर है। वाम आचार प्रवृत्ति पर, और दक्षिण निवृत्तिपर है। और दिव्याचार प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों से अतीत है, और यह द्वन्द्वातीत होने से परमानन्दप्रद मानागया है।

(लता-साधन)

(४२) उपासना की विधि में जो बाह्य क्रियाओं का भाव रक्खा गया है उसको तन्त्रशास्त्रप्रवर्त्तक आचार्यों ने आचार कहाहै। यह आचार विष्णूपासना, सूर्योपासना, गणेशोपासना, और शिवोपासना, इन चारों में सदा एकही तरह हुआ करताहै, परन्तु शक्ति

दिव्याचारः स भवति यस्तृतीयतया मतः।
द्वौ वामदक्षिणाचारौ विरुद्धौ हि परस्परम् ॥
दिव्याचारो नो विरुद्धः सर्वजीवहितप्रदः।
वामः प्रवृत्तिपरको दक्षिणस्तु निवृत्तिगः ॥
दिव्याचार उभाभ्यां वै परः श्रेयस्करो मतः ॥

(४२) उपासना-विधौ यस्तु भावो बाह्यक्रियाश्रयः।
आचारः कथ्यते सोऽसौ तन्त्रशास्त्रप्रवर्त्तकैः ॥
विष्णु-सूर्य-गणेशानां शिवस्योपासनासु च।
चतसृष्वयमाचारो भवत्येकविधः सदा ॥

की उपासना में समस्त तन्त्रशास्त्र के अनुसार वह आचार वामाचार और दक्षिणाचार इन दो भेदों से दो प्रकार का होता है । इस शक्ति उपासना में शक्ति की प्रधानता होने से तत्त्वदर्शिगणों ने साधनों का बहु विस्तार किया है एवं अधिकार भी दो रक्खे हैं। तन्त्रों में शक्ति उपासना विधि का बहुत विस्तार है। तन्त्रशास्त्रज्ञ ऋषिगणों ने दक्षिणाचार से जो विपरीत हो उसे वामाचार कहा है । साधक के सात्त्विक होने पर दिव्याचार कल्याणकारक होता है, और राजसिक साधक के लिये पश्वाचार हितकारक है, एवं तामसिक साधक वामाचार का अधिकारी है । वामाचार ही को वीराचार भी कहते हैं । यह कलियुग में लोक-

---

द्विविधस्तु भवत्येष वाम-दक्षिणभेदतः ।
आचारः शक्तिपूजायां सर्वतन्त्रानुसारतः ॥
शक्तिप्राधान्यतश्चाऽस्मिञ्छक्तिपूजाविधौ नृणाम् ।
साधनानां सुविस्तारः क्रियते तत्त्वदर्शिभिः ॥
अधिकारोऽत्र पूजायां द्विविधो दृश्यते तथा ।
तन्त्रेषु बहुविस्तारः शक्तिपूजाविधेरभूत् ॥
दक्षिणाचारतो योऽयं विपरीतो भवेदिह ।
वामाचारः स विज्ञेयस्तन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥
जने सत्त्वप्रधाने तु दिव्याचारः प्रशस्यते ।
पश्वाचारो रजोमुख्ये वामाचारश्च तामसे ॥
वामाचारस्तु योऽयं वै वीराचारः स कथ्यते ।

कल्याणार्थ निर्णीत हुआ है। कलियुग में अपनी अपनी प्रकृति के वश जीवगण इस आचार के द्वारा अक्षय कल्याण साधन कर सकेंगे। इस प्रकार से प्रवृत्ति की क्रियाओं में निवृत्ति के लक्ष्य रहने के कारण घोर प्रवृत्ति की चेष्टाओं में भी साधक आत्मोन्नति करता हुआ सिद्धि प्राप्त कर सकता है। मुनिओं से आदृत यही वामाचार का रहस्य है। प्रायः तन्त्रों में शक्ति उपासना में ही वामाचार-क्रिया-प्रधान लता-साधन का वर्णन है। परन्तु वैष्णव आदि चार सम्प्रदायों में जहां युगल-उपासना की विधि है, ऐसे सम्प्रदायों में भी इस क्रिया का वर्णन किसी किसी तन्त्र में मिलता है। दक्षिणाचार में जिस प्रकार दो

लोककल्याणसिद्ध्यर्थं निर्णीतोऽसौ कलौ युगे ॥
स्वां स्वां प्रकृतिमाश्रित्य जीवाः परवशाः कलौ।
वामाचारमनुष्ठाय लप्स्यन्ते शुभमव्ययम् ॥
एवं प्रवृत्तिकार्येषु निवृत्तेर्लक्ष्यतावशात्।
नूनं प्रवृत्तिचेष्टासु घोरास्वपि च साधकः ॥
प्रभवेत्साधितुं सिद्धिमात्मनश्चोन्नतिं सदा।
वामाचाररहस्यं वै ह्येतन्मुनिसमादृतम् ॥
वामाचारक्रियामुख्यं लतासाधनवर्णनम्।
विहितं तन्त्रमर्मज्ञैः प्रायशः शक्त्युपासने ॥
अन्येषु सम्प्रदायेषु युग्मोपासनवर्णना।
विहिता यत्र, तत्रैव क्रियेयमुपवर्णिता ॥
यथा द्वैविध्यमापन्नो दक्षिणाचार उच्यते।

भेद हैं उसी प्रकार वामाचार में आठ भेद तान्त्रिक गण से माने गये हैं। इस आचार में साधक के सात अधिकार माने गये हैं सो क्रमशः उन्नति करता हुआ साधक श्रीगुरुदेव की कृपा से प्राप्त करता है। महाभिषेक में साधक पूर्णता को प्राप्त करता है एवं विधि निषेध रहित होकर जीवन्मुक्ति को लाभ कर लेता है, और श्रीगुरुकृपा प्राप्त करके तत्स्वरूप हो जाता है। इस आचार में पञ्चतत्त्वों की प्रधानता है। पञ्चतत्त्व शक्तिमय समझे जाते हैं। अन्य आचारों में सब ब्रह्ममय समझा जाता है, परन्तु इस आचार में सब शक्तिमय समझा जाता है। और शक्ति की सहायता से ही परम-पद-प्राप्ति इस आचार का चरम

वामाचारे तथा चाष्टौ भेदाः प्रोक्ता हि तान्त्रिकैः ॥
वामाचारेऽधिकाराः स्युः सप्त वै परिकीर्तिताः ।
प्राप्यन्ते साधकैस्ते हि गुरुदेवकृपावशात् ॥
महाभिषेके प्राप्नोति साधकः परिपूर्णताम् ।
शून्यो विधिनिषेधाभ्यां जीवन्मुक्तो भवेत्ततः ॥
तथा गुरुकृपां प्राप्य तत्सारूप्यं प्रपद्यते ।
प्राधान्यं चाऽत्र तत्त्वानां पञ्चानां हि विधीयते ॥
गीयन्ते पञ्चतत्त्वानि शक्तिरूपाणि निश्चितम् ।
अन्यत्र ब्रह्मरूपाणि तत्त्वानि कथितानि तु ॥
अत्र सर्वं शक्तिमयं तत्साहाय्यात्परं पदम् ।
प्राप्तुं यत्नः परो लक्ष्यः साधनस्याऽस्य कीर्त्तितः ॥

लक्ष्य कहागया है। मन, वायु, वीर्य, ये तीनों कारण, सूक्ष्म, एवं स्थूल, रूप से एकही हैं, और शक्तिरूप हैं। स्थूलशक्ति-जयपूर्वक शीघ्रही सूक्ष्मशक्ति जय करते हुए शक्ति की कृपा प्राप्ति करना इस साधन का मुख्य लक्ष्य है। शक्ति की स्थूल विभूति का पूजन, उन विभूतियों की कृपाप्राप्ति, पञ्चतत्त्व सेवन द्वारा उपासना में सफलताप्राप्ति, उर्ध्वरेतस्त्व-प्राप्ति द्वारा मनका जय करना, तन्मात्रावशीकार पूर्वक वृत्तिजय और प्रकृतिकृपा के लाभद्वारा स्वस्वरूपप्राप्ति इस साधन का अन्तिम लक्ष्य है।

(सात अधिकार)

(४३) जब गुरुदेव कृपाकरके शिष्यको देवता व

मनोवीर्यं तथा वायुः कारणस्थूलसूक्ष्मतः।
भवन्ति त्वेकरूपाणि शक्तिरूपाणि चैव हि॥
स्थूलशक्तिं विजित्याशु सूक्ष्मशक्तेः पराजयात्।
कृपालाभो हि शक्तेश्च मुख्यो लक्ष्योऽस्य कीर्तितः॥
शक्तेः स्थूलविभूतीनां पूजनात्तत्कृपावशात्।
सेवनात्पञ्चतत्त्वानां साफल्यं स्यादुपासने॥
ऊर्ध्वरेतस्त्वसंप्राप्त्या मनसो वै पराजयः।
तन्मात्राणां वशीकाराज्जित्वा सर्वाश्च वृत्तिकाः।
स्वस्वरूपोपलब्धिर्हि लक्ष्यश्चास्यान्तिमं स्मृतम्॥
(४३) यदोपदिशते मन्त्रं शिष्यं कृत्वा दयां गुरुः।

मन्त्र का उपदेश दें तो वह संस्कार दीक्षा कहाता है। तदनन्तर साधक को उपयुक्त समझकर जब गुरुदेव साधन के साथ गुरु लक्ष्ययुक्त योगक्रियाओं का उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं और शिष्य को प्रतिज्ञाबद्ध करदिया करते हैं तो वह दूसरा उन्नत अधिकार महादीक्षा कहाता है। जिस गुरु-लक्ष्ययुक्त साधन-द्वारा साधक क्रमशः मन्त्रसिद्धि को प्राप्त करता है उसको पुरश्चरण कहते हैं। ग्रहणादि शुभकाल में जो साधारण रीति पर मन्त्रपुरश्चरण कियाजाता है वह क्रिया पुरश्चरण-शब्दवाच्य है। और विशेष क्रिया-साध्य, कालसाध्य और उपदेशसाध्य जो पुरश्चरण

स एव दीक्षासंस्कारो वर्णितो मुनिपुङ्गवैः ॥
ततस्तु साधकं योग्यं ज्ञात्वा प्रारभते गुरुः।
गुरुलक्ष्यसमायुक्ताः क्रिया योगस्य शोभनाः ॥
उपदेष्टुं निजं शिष्यं तदा नद्धं प्रतिज्ञया।
कथितेयं महादीक्षा तन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥
गुरुलक्ष्यसमायुक्तसाधनेनेह साधकः।
येन क्रमेण संसिद्धिं मन्त्रस्याप्नोति शर्मदाम् ॥
तदेवाऽत्र महाधीभिः पुरश्चरणमीरितम्।
ग्रहणादिशुभे काले रीत्या सामान्यया किल ॥
क्रियते यो मन्त्रजपः तत्पुरश्चरणं मतम्।
क्रियाविशेषसंसाध्या कालसाध्योपदेशतः ॥

होता है उसको महापुरश्चरण कहते हैं । पुरश्चरण द्वारा सिद्धि लाभ करने से साधक उन्नत अधिकारों को प्राप्त होजाता है । जब गुरुदेव शिष्य को साधन सम्बन्धीय गुप्त रहस्यों के उपदेश देने के उपयोगी समझते हैं तो संस्कारों के प्रदानद्वारा गुरुदेव उस शिष्य को गुप्त रहस्यों के भेद बताकर आनन्द राज्य का अधिकारी किया करते हैं, उस विधि को अभिषेक कहते हैं । पञ्चदेवात्मक पञ्चसम्प्रदायों में इस अभि-षेक के स्वतन्त्र स्वतन्त्र नाम सुनने में आते हैं । और जब श्रीगुरुदेव उन्नततम संस्कारद्वारा साधक को अपने समान करके अपने में मिलालेते हैं उसको महाभिषेक कहते हैं । किन्हीं किन्हीं तन्त्रों में उसको पूर्णाभिषेक भी कहा करते हैं । आध्यात्मिक उन्नति द्वारा जब उपासक सर्व्व-उच्च अवस्था को प्राप्त करके

साध्या च या पुरश्चर्य्या सा महादिः प्रकीर्तिता ।
लब्ध्वा सिद्धिं पुरश्चर्य्याद्वारा साधक उन्नतः ॥
अधिकारी यदा जातः सद्गुरोः कृपया तदा ।
योग्यं ज्ञात्वाऽऽनन्दराज्ये रहस्यमनुशास्ति तम् ॥
एषोऽभिषेको विद्वद्भिस्तान्त्रिकैः परिकीर्तितः ।
पञ्चदेवात्मकाः पञ्च सम्प्रदायाः श्रुताः श्रुतौ ॥
श्रूयन्तेऽस्यैव नामानि तेषु नूनं पृथक् पृथक् ।
अत्युन्नतैस्तु संस्कारैः संस्कृतं साधकं गुरुः ॥
स्वस्मिन्यदा मेलयति स महादिः प्रकीर्तितः ।
आध्यात्मिकोन्नतिद्वारोच्चावस्थां प्राप्य साधकः ॥

नामरूप की ऐक्यता प्राप्त करने को समर्थ होने लगता है उसी सर्व्वोत्तम अधिकार को तद्भाव कहते हैं। इस भावद्वारा साधक की अपने इष्टदेव के साथ ऐक्यता स्थापन होने लगती है एवं इसी अवस्था से महाभाव की प्राप्ति हुआ करती है।

धारणावर्णन।

(४४) वाह्य और आभ्यन्तर भेद से धारणा दो प्रकार की होती है। मन्त्रयोग में धारणा परम सहायक है। बहिः पदार्थों में मन के योग से बहिर्धारणा का साधन और सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्जगत् के विषयों में मन के योग से अन्तर्धारणा का साधन होता है। धारणा की सिद्धि श्रद्धा और योगमूलक है।

नामरूपैकताज्ञाने सामर्थ्यं लभते वहु।
सर्व्वोत्तमाधिकारोऽयं वुधैस्तद्भाव ईर्य्यते॥
साधकोऽनेन भावेन स्वेष्टदेवैकतां दृढाम्।
संस्थाप्याऽन्ते महाभावं लभते ब्रह्मविन्मतम्॥
(४४) वाह्याऽऽभ्यन्तरभेदेन धारणा द्विविधा मता।
सहायतां प्रकुरुते मन्त्रयोगे हि धारणा॥
वाह्यवस्तुमनोयोगाद् वाह्या भवति धारणा।
अन्तर्जगत्सूक्ष्मद्रव्ये मनोयोगान्मताऽपरा।
श्रद्धायोगसमभ्यासात्स्फुटं सिध्यति धारणा॥

(धारणाऽधिकारवर्णन)

(४५) धारणा में सिद्धि प्राप्त करने से योगी मन्त्रसिद्धि और ध्यानसिद्धि प्राप्त करसक्ता है। भक्ति, आचार, प्राणसंयम, जपसिद्धि, देवता-सान्निध्यता, दिव्यदेशादि में दैवी शक्ति का आविर्भाव और इष्टरूप-दर्शन यह सब धारणासिद्धि से ही प्राप्त होते हैं। धारणासिद्धि की अनेक स्थूल और सूक्ष्म क्रियाएँ हैं सो योगमर्मज्ञ श्रीगुरुदेव के द्वारा यथाविधि प्राप्त करने योग्य हैं।

(मन्त्रों के दश संस्कार)

(४६) जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति इन दशविध संस्कार द्वारा मन्त्र की सिद्धि हुआ क-

---

(४५) धारणासिद्धिमासाद्य सिद्धिं वै ध्यानमन्त्रयोः।
प्राप्नोति साधको नित्यं मन्त्रयोगपरायणः॥
भक्तिर्जपस्य संसिद्धिराचारः प्राणसंयमः।
साक्षात्कारो देवताया दिव्यदेशेषु नित्यशः॥
देवशक्तिविकाशो वै हीष्टदर्शनमेव च।
लभ्यन्ते धारणासिद्ध्या सर्वाणीति विनिश्चयः॥
स्थूलसूक्ष्मक्रिया या वै धारणासिद्धिलब्धये।
विज्ञेया योगमर्मज्ञाद् गुरुदेवाद्यथाविधि॥

(४६) जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा।
अथाऽभिषेको विमलीकरणाऽऽप्यायने पुनः॥
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।

रती है। मातृका यन्त्र द्वारा मन्त्रवर्णों के उद्धार का "जनन" कहते हैं। मातृका यन्त्र केसर, चन्दन, अथवा भस्मद्वारा सुवर्णादि पात्र पर अङ्कित किया जाता है। केसर द्वारा शक्ति उपासना में, चन्दनद्वारा विष्णु उपासना में और भस्म द्वारा शिव उपासना में यन्त्र अङ्कित करना उपयोगी हुआ करता है। एक अष्टदल पद्म पूर्वोक्त विधि से अङ्कित करके उन अष्टदलों में अष्टवर्ग स्वतन्त्र रूप से पूर्वादि क्रम से लिखे जावें। पद्म के बाहर की ओर चतुर्द्वार और चतुष्कोण अङ्कित करते हुए पद्म को वेष्टन करदिया जाय। यन्त्र के चारों ओर के चार कोनों पर ठं मन्त्र और चारों द्वार पर वं मन्त्र लिखा जाय। व्योम अर्थात् हकार, इन्दु अर्थात् सकार, औकार, रसनार्ण अर्थात् विसर्ग; इन सब वर्णों

मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुद्धारो जननं स्मृतम् ॥
स्वर्णादिपात्रे संलेख्य मातृकायन्त्रमुत्तमम्।
कश्मीरचन्दनेनाऽपि भस्मना वाऽथ सुव्रते ॥
काश्मीरं शक्तिसञ्चारे चन्दनं वैष्णवे मनौ।
शैवे भस्म समाख्यातं मातृकायन्त्रलेखने ॥
यन्त्रोऽष्टदलपद्मो हि कार्यः पूर्वं यथाविधि।
कादिमान्ताः पञ्चवर्गा दिक्षु पूर्वादितो न्यसेत् ॥
यादिवान्ताः शादिहान्ता लक्ष्मीशे प्रविन्यसेत् ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं दिक्षु वं ठं विदिक्षु च ॥
(अपिच) व्योमेन्दू रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरम्।

को युक्त करके "ह्लौः" मन्त्रको कर्णिकारूप से पद्ममें स्थापन करके दो दो स्वर वर्णद्वारा पद्मके अष्टकेसर परिपूर्ण किये जायँ । और एक वृत्तद्वारा इसको वेष्टित कियाजाय। उक्त प्रकार से मातृकायन्त्र बनावे ।

मातृकायन्त्र ।
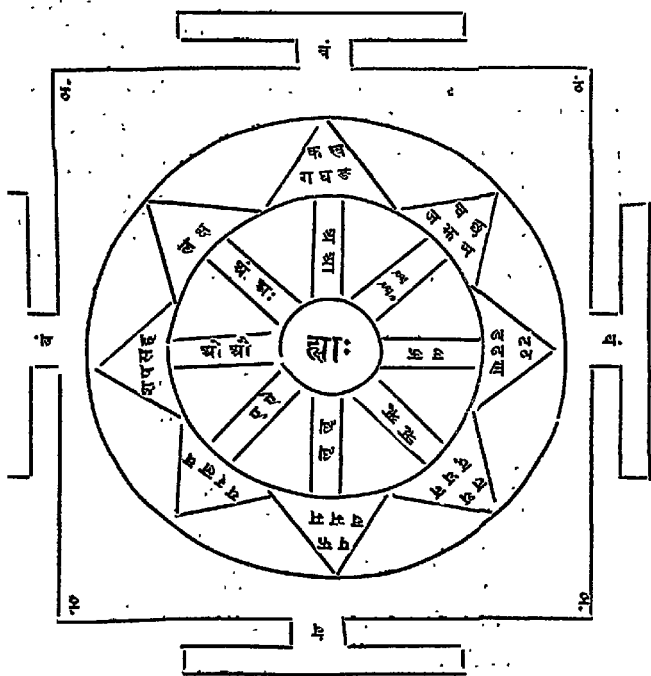
वर्णोल्लासितसुच्छदं वसुमतीगेहेन संवेष्टितम् ॥

पूर्वोक्त रीतिसे उक्त मातृकायन्त्र द्वारा उद्धृत वर्णों को पंक्ति के क्रम से लिख कर प्रत्येक वर्ण को प्रणव द्वारा पुटित करके एक एक को शतवार अथवा दश वार जप किया जाय, इस प्रकार की जपक्रिया को "जीवन" कहते हैं। मन्त्र के वर्णों को पृथक् पृथक् लिखकर "वं" मन्त्रद्वारा चन्दनोदक से दस अथवा शतवार ताडन करने को मुनिगण "ताडन" क्रिया कहते हैं। मन्त्र के वर्णों को पृथक् पृथक् रूप से लिखकर मन्त्रवर्णों की संख्या के अनुसार रक्त करवीर-पुष्पोंद्वारा "रं" इस मन्त्र से मन्त्रवर्णों को हनन करे तो इस क्रिया का नाम "बोधन" होगा। मन्त्रवर्णों को लिखकर मन्त्राक्षर संख्या के अनुसार रक्त करवीरपुष्पों द्वारा "रं" इस मन्त्र से एक एक वार वर्णों

पङ्क्तिक्रमेण विधिना मुनिभिस्तत्र निश्चितम् ॥
प्रणवान्तरितान्कृत्वा मन्त्रवर्णाञ्जपेत्सुधीः ।
प्रत्येकं शतवारं तु * जीवनं तदुदीरितम् ॥
मन्त्रवर्णान्समालिख्य ताडयेच्चन्दनाऽम्भसा ।
प्रत्येकं वायुबीजेन पूर्ववत्ताडनं मतम् ॥
विलिख्य मन्त्रवर्णांस्तु प्रसूनैः करवीरजैः ।
तन्मन्त्रवर्णसंख्याकैर्हन्याद्रेफेण बोधनम् ॥
विलिख्याक्षरसंख्यातैः रक्तपुष्पहयारिभिः ।
मन्त्रवर्णान्वह्निनैकमभिमन्त्र्यसकृत्सकृत् ॥

* पृथक् शतं वा दशधा इति पाठान्तरम् ।

को अभिमन्त्रित करके उस मन्त्रोक्त विधान के अनुसार अश्वत्थपल्लव द्वारा मन्त्रवर्णों की संख्या के अनुसार अभिसिञ्चित करने से "अभिषेक" क्रिया होती है। सुषुम्ना के मूलभाग एवं मध्यभाग में मंत्र चिन्तन करके ज्योतिर्मन्त्र अर्थात् "ओं ह्रौं" इस मन्त्र से मलत्रय दग्ध करने को "विमलीकरण" कहते हैं। स्त्रियों से जो मल उत्पन्न होता है उसको "मायिक", पुरुषों से जो मल उत्पन्न होता है उसको "कार्मण" और दोनों से जो मल उत्पन्न हो उसको "आनव्य" कहते हैं। ये मलत्रय साधन के बाधक हैं। तार=ओं, व्योम=ह्, अग्नि=र, मनु=औ और दण्डी=म्; इन सबों के मेल से "ओं ह्रौं" हुआ करता है जिसको ज्योतिर्मन्त्र कहा जाता है। मन्त्र वर्णों को स्वर्ण के जल में, कुशजल में अथवा पुष्प

तत्तन्मन्त्रोक्तविधिनाऽभिषेकस्तु प्रकीर्तितः।
अश्वत्थपल्लवैःसिञ्चेन्मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया॥
सञ्चिन्त्य मनसा मन्त्रं सुषुम्नामूलमध्यतः।
ज्योतिर्मन्त्रेण विधिवद्दहेन्मलत्रयं*यती॥
तारं व्योमाग्निमनुयुग्दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः।
स्वर्णेन कुशतोयेन पुष्पतोयेन वा तथा।

* आनव्यं कार्मणं मायिकं चेति मलत्रयम्।
मायिकं नाम योषोत्थं पौरुषं कार्म्मणं मलम्।
आनव्यं तद्द्वयं प्रोक्तं निषिद्धं तन्मलत्रयम्॥

जल में पूर्व लिखित रीति के मन्त्र से अर्थात् ज्योतिर्मन्त्र से विधिपूर्वक आप्यायन करने को "आप्यायन" कहते हैं। पूर्व कथित ज्योतिर्मन्त्र द्वारा जल से मन्त्र पर तर्पण करने को "तर्पण" कहते हैं। शक्तिमन्त्र को मधु से, विष्णुमन्त्र को कर्पूरमिश्रित जल से और शिवमन्त्र को दुग्ध द्वारा तर्पण करने की विधि शास्त्रों में कथित है। तार=ओं, माया=ह्रीं और रमा=श्रीं; इनके द्वारा अर्थात् "ओं ह्रीं श्रीं" इस मन्त्रद्वारा मन्त्र के दीपन करने को "दीपन" क्रिया कहते हैं। और जिस मन्त्र का जप किया जाय उस मन्त्र को अति गुप्त रखने को "गुप्ति" क्रिया कहते हैं। यही मन्त्रों के दशसंस्कार हैं जो तन्त्रों में अतिगुप्त हैं। अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार इन दस संस्कारों से संस्कृत मन्त्र का जप करनेवाला मन्त्री वाञ्छित फल को प्राप्त करता है।

तेन मन्त्रेण विधिवदाप्यायनविधिः स्मृतः ॥
मन्त्रेण वारिणा मन्त्रे तर्पणं तर्पणं मतम्।
मधुना शक्तिमन्त्रेषु वैष्णवे चेन्दुमज्जलैः ॥
शैवे घृतेन दुग्धेन तर्पणं सम्यगीरितम्।
तारमायारमायोगो मनोर्दीपनमुच्यते ॥
जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम्।
संस्कारा दश सम्प्रोक्ताः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥
यान्कृत्वा सम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमाप्नुयात् ॥

दिव्यदेशवर्णन ।

(४७) जिस प्रकार दुग्ध गौ के सर्व शरीर में व्यापक होनेपर भी केवल स्तनद्वारा क्षरित होता है उसी प्रकार परमात्मा के सर्व्वव्यापक होने पर भी उनका विकाश दिव्यदेशों में होता है । दिव्यदेश तन्त्रों में सोलह कहे हैं यथाः—वह्नि, अम्बु, लिङ्ग, स्थण्डिल, कुड्य, पट, मण्डल, विशिख, नित्ययन्त्र, भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय और मूर्द्धा । साधक के अधिकारानुसार इन दिव्य देशों में उपासना करने का उपदेश उसको प्राप्त होता है । योगसिद्धि प्राप्त करने में ये सबही परम हितकर हैं । धारणा की सहायता से दिव्यदेशों में इष्टदेवता का आविर्भाव

(४७) यथा गवां सर्व्वशरीरजं पयः,
पयोधरान्निःसरतीह केवलम् ।
तथा परात्माऽखिलगोऽपि शाश्वतो
विकाशमाप्नोति स दिव्यदेशकैः ॥
तन्त्रेषु दिव्यदेशाः षोडश प्रोक्ता यथाऽत्र कथ्यन्ते ।
अग्न्यम्बुलिङ्गवेद्यो भित्तीरेखा तथा च चित्रं च ॥
मण्डलविशिखौ नित्ययन्त्रं पीठं च भावयन्त्रं च ।
मूर्त्तिर्विभूतिनाभी हृदयं मूर्द्धा च षोडशैते स्युः ॥
यथाऽधिकारं लभते दिव्यदेशे ह्युपासनाम् ।
योगसिद्ध्युपलब्धौ हि सहकारितया मता ॥
धारणा सहकारेण दिव्यदेशे प्रकाशते ।

होता है। मन्त्रयोग में दिव्यदेश-सेवन परमहित-कर है। दिव्यदेशों का विस्तारित वर्णन और भेद, वेद और तन्त्रों में अनेक प्रकार से वर्णित है। मृण्मय आदि मूर्तियों में प्रथम देवता का आवाहन करके पूजा आरम्भ करना उचित है, परन्तु प्रतिष्ठित देव-विग्रह, संस्कृत अग्नि अथवा जल में आवाहन और विसर्जन की आवश्यकता नहीं रहती।

प्राणक्रियावर्णन।

(४८) मन प्राण और वायु ये तीनों एक सम्बन्ध से युक्त हैं। वायु और प्राण कार्य्य और कारणरूप हैं इस कारण प्राणायाम-क्रिया के साथ न्यास-क्रिया का एकत्व सम्बन्ध है। प्राणायाम के विस्तारित भेद हठ-

---

इष्टदेवो मन्त्रयोगे दिव्यदेशो हितप्रदः॥
वेदेषु तन्त्रशास्त्रेषु दिव्यदेशस्य वर्णना।
भेदश्च वर्णितो विज्ञैर्विस्तरेण महात्मभिः॥
कुर्य्यादावाहनं मूर्तौ मृण्मयादौ सदैव हि।
प्रतिमायां जले वह्नौ नावाहनविसर्जने॥
(४८) मनः प्राणा मरुच्चैतेऽभेदसम्बन्धयोगिनः।
कार्य्यकारणरूपत्वं वायोः प्राणस्य चेष्यते॥
अतः प्राणक्रियायोगयुक्ता न्यासाः प्रकीर्तिताः।
प्राणायामस्य भेदा वै वर्णिता हठयोगिभिः॥

योग के आचार्य्यों ने वर्णन किये हैं । मन्त्रयोग में भी सहित प्राणायाम ग्रहण कियागया है सो परम हित-कर है । तदतिरिक्त सहज प्राणायाम भी कोई कोई आचार्य्य उपदेश देते हैं । न्यास के कई भेद हैं उन में से सात प्रकार के न्यास प्रधान हैं सो यथाऽधिकार श्रीगुरुदेव से सीखने योग्य हैं । साधारण उपासना में करन्यास और अङ्गन्यास ही उपयोगी होते हैं ॥ विस्तारित उपासना कार्य्य में ऋष्यादिन्यास व मातृकान्यास आदि अवश्य करणीय है । दिग्दर्शनार्थ प्राणायाम और न्यास के उदाहरण दियेजाते हैं ।

(प्राणायामवर्णन)

(४६) प्राण को बाह्य विषयों से हटा कर उदर

मन्त्रयोगेऽपि सहितः प्राणायामो विधीयते ।
मन्त्रयोगे तथा केचिदाचार्य्या वै प्रचक्षते ॥
प्राणायामो हि सहजः सर्वलोकहितप्रदः ।
न्यासा यद्यपि बहवः परं तत्र प्रधानता ॥
सप्तानां ते तु विज्ञेया गुरुदेवोपदेशतः ।
साधारणोपासनायां करन्यासाङ्गन्यासकौ ॥
उपकारितया प्रोक्तौ विस्तरोपासनासु तु ।
ऋष्यादि मातृकान्यासो ह्यनुष्ठेयतया मतः ॥
दिग्दर्शनार्थं न्यासस्य प्राणायामस्य चैव हि ।
विन्यस्यतेऽवबोधाय तथोदाहरणं स्फुटम् ॥

(४६) यदा प्राणं समारोप्य पूरयित्वोदरस्थितम् ।

में पूरण करे और प्रणव तथा व्याहृति से युक्त करके गायत्रीमन्त्र का जप साधक तीनवार करे एवं पुनः तीनों सन्धियों में तीन तीन वार गायत्रीमन्त्र-जप करने से प्राणायाम किया हुआ करती है।

(बाह्यमातृकान्यास)

(५०) अनामिका और मध्यमा इन दोनों अंगुलियों से ललाट में न्यास करे, तर्जनी मध्यमा और अनामिका द्वारा मुख में, अङ्गुष्ठ और अनामिका से नेत्रों में, अङ्गुष्ठ से कर्णद्वय में, कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ से नासिकाद्वय में, तर्जनी मध्यमा और अनामिका द्वारा कपोलों पर, मध्यमा से ओष्ठद्वयपर, अनामिका द्वारा दन्तपंक्तिद्वय में, मध्यमा से उत्तमाङ्गपर, अनामिका और मध्यमाद्वारा मुख में, कनिष्ठा अनामिका और मध्यमाङ्गुलि से हस्त पाद और उभय

प्रणवेन सुसंयुक्तां व्याहृतिभिश्च संयुताम् ॥
गायत्रीं च जपेद्विमः प्राणसंयमने त्रयम् ।
पुनश्चैवं त्रिभिः कुर्य्यात् पुनश्चैवं त्रिसन्धिषु ॥

(५०) ललाटेऽनामिकामध्ये विन्यसेन्मुखपङ्कजे ।
तर्जनीमध्यमानामा वृद्धानामे च नेत्रयोः ॥
अङ्गुष्ठं कर्णयोर्न्यस्य कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ नसोः ।
मध्यास्तिस्रो गण्डयोस्तु मध्यमां चोष्ठयोर्न्यसेत् ॥
अनामां दन्तयोर्न्यस्य मध्यमामुत्तमाङ्गके ।
मुखेऽनामां मध्यमां च हस्तपादेषु पार्श्वयोः ॥

पार्श्व में, कनिष्ठा अनामिका और मध्यमा द्वारा पृष्ठ में, कनिष्ठा अनामिका मध्यमा और अङ्गुष्ठ से नाभि में, सम्पूर्ण अङ्गुलियों से उदर में एवं करतलद्वारा अन्तःकरण स्कन्धद्वय और ककुत्स्थलपर न्यास क-रना उचित है। हृदय से लेकर हस्त पर्य्यन्त, हृदय से लेकर पाद पर्य्यन्त, हृदय से लेकर कुक्षि पर्य्यन्त और हृदय से लेकर मुख पर्य्यन्त करतलद्वारा न्यास करना चाहिये। ये मातृका मुद्राएँ यथाक्रम निर्दिष्ट कीगई हैं, इनको न जानकर जो साधक न्यास करता है उसका न्यास निष्फल है।

ललाट, मुखमण्डल, चक्षुद्वय, कर्णद्वय, नासिका-द्वय, कपोलद्वय, ओष्ठद्वय, दन्तपङ्क्तिद्वय, मस्तक, मुख, हस्तपाद की सन्धि, हस्त पाद का अग्रभाग,

---

कनिष्ठाऽनामिकामध्यास्तास्तु पृष्ठे च विन्यसेत्।
ताः साङ्गुष्ठा नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ च विन्यसेत्॥
हृदये च तलं सर्वमंसयोश्च ककुत्स्थले।
हृत्पूर्वं हस्तपत्कुक्षिमुखेषु तलमेव च॥
एतास्तु मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्तिताः।
अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः॥
ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्यदोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च॥

पार्श्वद्वय, पृष्ठ, नाभि, उदर, हृदय, दक्षिणस्कन्ध, ककुत्स्थल, वामस्कन्ध, हृदय से लेकर हस्त पर्य्यन्त, हृदयसे लेकर पाद पर्य्यन्त, हृदय से लेकर उदर पर्य्यन्त और हृदय से लेकर मुख पर्य्यन्त इन सकल स्थानों में मातृका वर्णों के द्वारा यथाक्रम न्यास करना फलप्रद है। प्रथम और अन्त में प्रणव अथवा अन्त में नमः शब्द लगाकर विन्दुसहित अथवा विन्दु-वर्जित पञ्चाशत् वर्णों के द्वारा न्यास करने की विधि महर्षियों ने वर्णन की है।

(मातृकान्यास)

(५१) श्रीमहादेव कहते हैं कि हे देवेशि ! मातृका न्यास को सुनो। इस मातृकान्यास के करने से पाप-राशि नष्ट होजाती है। इस मातृका मन्त्र का ऋषि ब्रह्मा है, गायत्री छन्द है, मातृकादेवी देवता है, व्यञ्जनवर्ण वीज हैं और सकल स्वर इसकी शक्ति हैं।

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽसके ।
ककुद्यंसे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे तथा ॥
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान्यथाक्रमात् ।
ओमाद्यन्तो नमोन्तो वा सविन्दुर्विन्दुवर्जितः ॥
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः क्रमादुक्तो मनीषिभिः ।
(५१) मातृकां शृणु देवेशि ! न्यसेत् पापनिकृन्तिनीम् ।
ऋषिर्ब्रह्माऽस्य मन्त्रस्य गायत्रीछन्द उच्यते ॥
देवता मातृकादेवी वीजं व्यञ्जनमुच्यते ।

इनको कहकर षडङ्ग न्यास करने की विधि है । अं आं इनके बीच में विन्दुयुक्त कवर्ग, इं ईं इनके बीच में विन्दुयुक्त चवर्ग, उं ऊं इनके बीच में विन्दुयुक्त टवर्ग, एं ऐं इनके बीच में विन्दुयुक्त तवर्ग और ओं औं इनके बीच में विन्दुयुक्त पवर्ग एवं अं अः इनके बीच में विन्दुयुक्त यवर्ग शवर्ग ल और क्ष देकर चतुर्थ्यन्त हृदय शिर शिखा कवच नेत्र और अस्त्र शब्द देकर क्रम से नमः स्वाहा वषट् हुं वौषट् और फट् ये शब्द लगाकर अङ्गों को स्पर्श करने से अङ्ग-न्यास होता है । यह षडङ्ग मातृकान्यास साधक के पापों को हरण करनेवाला है ।

मूलाधार से लेकर मस्तक पर्य्यन्त एक एक विन्दु युक्त वर्ण का उच्चारण करके और उसके अन्तमें नमः

शक्तयस्तु स्वरा देवि ! षडङ्गं न्यासमाचरेत् ॥
अं आं मध्ये कवर्गन्तु इं ईं मध्ये चवर्गकम् ।
उं ऊं मध्ये टवर्गन्तु एं ऐं मध्ये तवर्गकम् ॥
ओं औं मध्ये पवर्गन्तु विन्दुयुक्तं न्यसेत्प्रिये ।
अनुस्वारादिसर्गान्तौ यशवर्गौ सलक्षकौ ॥
हृदयं च शिरो देवि ! शिखाकवचकं तथा ।
नेत्रमस्त्रं न्यसेन्ङेन्तं नमः स्वाहाक्रमेण तु ॥
वषट्हुंवौषडन्तं च फडन्तं योजयेत् प्रिये ! ।
षडङ्गोऽयं मातृकायाः सर्वपापहरः स्मृतः ॥
एकैकवर्णमुच्चार्य्य मूलाधाराच्छिरोऽन्तकम् ।

शब्द लगाकर न्यासकरे इसको अन्तर्मातृका न्यास कहते हैं। यथाः—सुवर्णसदृश चतुर्दलविशिष्ट मूलाधार चक्र को व श ष स इन चार सविन्दु वर्णों से विभूषित ध्यान करे, विद्युत् के सदृश और अग्नि के समान तेजःपुञ्जविशिष्ट षड्दल स्वाधिष्ठान चक्रको व भ म य र ल इन छः सविन्दु वर्णों से विभूषित, नीलमेघ सदृश दशदल विशिष्ट मणिपूर चक्र को विन्दुयुक्त ड ढ ण त थ द ध न प फ इन दस वर्णों से विभूषित, प्रवाल (मूंगा) की कान्ति के सदृश योगियों के हृदय में स्थित द्वादशदल अनाहत चक्र को विन्दुयुक्त क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ इन वारह वर्णों से विभूषित, धूँएं के समान आभावाले षोडशदल विशिष्ट विशुद्ध चक्र को विन्दुयुक्त

नमोऽन्त इति विन्यास आन्तरः परिकीर्तितः ॥
अथान्तर्मातृकान्यासो मूलाधारे चतुर्दले।
सुवर्णाभे वशषस चतुर्वर्णविभूषिते ॥
षड्दले वैद्युतनिभे स्वाधिष्ठानेऽनलत्विषि।
वभमैर्यरलैर्युक्ते वर्णैः षड्भिश्च सुव्रते ! ॥
मणिपूरे दशदले नीलजीमूतसन्निभे।
डादिफान्तदलैर्युक्ते विन्दूद्भासितमस्तकैः ॥
अनाहते द्वादशारे प्रवालरुचिसन्निभे।
कादिठान्तदलैर्युक्ते योगिनां हृदयङ्गमे ॥

षोडश स्वरों से विभूषित, चन्द्रकान्ति द्विदल आज्ञा-चक्र को विन्दुयुक्त ह क्ष इन दो वर्णों से विभूषित और हिमसन्निभ सर्ववर्णसंयुक्त सहस्रार चक्र को अकथादि त्रिरेखास्थित ह ल क्ष इन तीन सविन्दु वर्णों से विभूषित ध्यान करे। एवं उसके बीच में सृष्टि स्थिति और लयके कारण परविन्दु (परमशिव) को समाहित चित्त से ध्यान करे।

(ऋष्यादिन्यास)

(५२) जो महेश्वरके मुखसे तपस्यादिद्वारा मन्त्र को जानकर साधन करता है वही विमल चित्त उस मन्त्र का ऋषि समझा जाता है। उसकी श्रेष्ठता के कारण उसका न्यास मस्तक पर किया जाता है।

विशुद्धे षोडशदले धूम्राभे स्वरभूषिते।
आज्ञाचक्रे तु चन्द्राभे द्विदले हक्षलाञ्छिते॥
सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्णविभूषिते।
अकथादित्रिरेखात्महलक्षत्रयभूषिते॥
तन्मध्ये परविन्दुं च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।
एवं समाहितमना ध्यायेन्न्यासोऽयमान्तरः॥
(५२) महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनुम्।
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः॥
गुरुत्वान्मस्तके चाऽस्य न्यासस्तु परिकीर्तितः।

सम्पूर्ण मन्त्र तत्त्वों का जो आच्छादन करता है उसे छन्द कहते हैं। छन्द का न्यास मुखमें करना चाहिये क्योंकि छन्द अक्षरमय और पदमय होता है। सम्पूर्ण मनुष्यों के हृदयकमलस्थ देवता जो मनुष्यों को भाषण करने के लिये प्रेरित किया करती हैं उस का न्यास हृदयकमल में करना चाहिये। ऋषि और छन्द न जानने से मन्त्र फलवान् नहीं होते। और मन्त्रों का विनियोग न जानने से उनकी शक्ति घट जाती है।

ऋषि का न्यास मस्तकदेश में, छन्द का मुख में, देवता का हृदय में, गुह्यदेश में वीज का, पादयुगल में शक्ति का और सकल अङ्ग में कीलक का न्यास करना चाहिये।

सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते ॥
अक्षरत्वात्पदत्वाच्च मुखे छन्दः समीरितम्।
सर्वेषामेव जन्तूनां भाषणात्प्रेरणात्तथा ॥
हृदयाम्भोजमध्यस्था देवता तत्र तां न्यसेत्।
ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रफलभाग्भवेत् ॥
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम्।
ऋषिं न्यसेन्मूर्द्धिदेशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे ॥
देवतां हृदये चैव वीजं तु गुह्यदेशके।
शक्तिं च पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ॥

मुद्रावर्णन ।

(५३) मुद्राओं के द्वारा देवताओं का आनन्द-वर्द्धन हुआ करता है और उनसे साधक के पापों का नाश भी होता है इस कारण तन्त्रवेत्ता मुनियों ने इनकी मुद्रा संज्ञा की है। श्रीदेवादिदेव महादेव कहते हैं कि अब मैं मुद्राओं का वर्णन करताहूँ जो सब तंत्रों में कल्पना की गई हैं और देवार्चन के समय जिनके साधन करने से मंत्रों के देवता प्रसन्न हुआ करते हैं। पूजन में, जप में, ध्यान में, काम्यकर्म्म में, स्नान के समय, आवाहन करते समय, शङ्खस्थापन में, प्राण-प्रतिष्टा में, रक्षण में, नैवेद्य में और अन्यान्य कल्पोक्त कार्य्यों में उन कार्य्यों के लक्षण के अनुसार यथोचित रीति से मुद्राओं का प्रदर्शन कराना उचित है। आवाहनी प्रभृति नौ प्रकार की मुद्रा सर्वसाधारणी मानीगई

(५३) मोदनात्सर्वदेवानां द्रावणात्पापसन्ततेः ।
तस्मान्मुद्रेतिविख्याता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥
अथ मुद्राः प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु कल्पिताः ।
याभिर्विरचिताभिश्च मोदन्ते मन्त्रदेवताः ॥
अर्चने जपकाले च ध्याने काम्ये च कर्म्मणि ।
स्नाने चाऽऽवाहने शङ्खे प्रतिष्ठायाञ्च रक्षणे ॥
नैवेद्ये च तथाऽन्यत्र तत्तत्कल्पप्रकाशिते ।
स्थाने मुद्राः प्रदष्टव्याः स्वस्वलक्षणलक्षिताः ॥
आवाहन्यादिका मुद्रा नव साधरणीमताः ।

है तथा षडङ्ग मुद्राभी सब कामों के लियेही प्रशस्त हैं। परिडतों ने विष्णुपूजा के लिये एकोनविंशति मुद्राओं की आज्ञा की है। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वेणु, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, विल्व, गरुड़, नारसिंही, वाराही, हायग्रीवी, धनुष्, वाण, परशु, जगन्मोहनिका, और कामनामिका मुद्रा, इन एकोनविंशति (उन्नीस) मुद्राओं के द्वारा श्रीविष्णुभगवान् को आनन्द प्राप्त हुआ करता है। लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, माला, वर, अभय, मृग, खट्वाङ्ग, कपाल और डमरु नामिका मुद्रा, ये दश मुद्राएँ श्रीमहादेव को आनन्दित करनेवाली हैं। श्रीसूर्य्य-उपासना के अर्थ एक

तथा षडङ्गमुद्राश्च सर्वमन्त्रेषु योजयेत् ॥
एकोनविंशतिर्मुद्रा विष्णोरुक्ता मनीषिभिः।
शङ्खचक्रगदापद्मवेणुश्रीवत्सकौस्तुभाः ॥
वनमाला तथा ज्ञानमुद्रा विल्वाऽऽह्वया तथा।
गरुडाख्या परामुद्रा विष्णोः सन्तोषवर्द्धिनी ॥
नारसिंही च वाराही हायग्रीवी धनुस्तथा।
वाणमुद्रा च परशुर्जगन्मोहनिका परा ॥
काममुद्रा परा ख्याता शिवस्य दशमुद्रिकाः।
लिङ्गयोनित्रिशूलाख्या मालेष्टाभीमृगाऽऽह्वयाः ॥
खट्वाङ्गा च कपालाख्या डमरुः शिवतोषदाः।
सूर्य्यस्यैकैव पद्माख्या सप्तमुद्रा गणेशितुः ॥

मात्र पद्ममुद्रा ही कहीगई है। श्रीगणेश-पूजा के अर्थ दन्त, पाश, अङ्कुश, विघ्न, परशु, लड्डुक और वीजपूर मुद्रा, ये सात मुद्राएँ वर्णित हैं। एवं पाश, अङ्कुश, वर, अभय, खड्ग, चर्म, धनु, शर, और मूसल मुद्रा, ये नौ मुद्राएँ दुर्गादेवी के अतिप्रिय हैं और विशेषतः सब प्रकार की शक्तियों के अर्थ ये प्रशस्त हैं। लक्ष्मीपूजन में लक्ष्मीमुद्रा और सरस्वती-पूजन में अक्षमाला, वीणा, व्याख्या और पुस्तक मुद्रा, ये चार मुद्राएँ कहीगई हैं। अग्निदेव के पूजन में सप्तजिह्वाख्य मुद्रा प्रसिद्ध है। मत्स्य, कूर्म्म, लेलिहा, मुंड और महायोनि मुद्रा ये सब, सब प्रकारकी ऋद्धि और सिद्धि को देनेवाली हैं। शक्ति देवी के अर्चन में महायोनि मुद्रा, श्यामा आदि के पूजन में

दन्तपाशाङ्कुशाविघ्नपरशुलड्डुसंज्ञिताः।
वीजपूराऽऽह्वया मुद्रा ज्ञेया विघ्नेशपूजने॥
पाशाङ्कुशवराऽभीतिखड्गचर्म्मधनुःशराः।
मौशली मुद्रिका दौर्गी मुद्राः शक्तेः प्रियङ्कराः॥
लक्ष्मीमुद्राऽर्चने लक्ष्म्या वाग्वादिन्याश्च पूजने।
अक्षमाला तथा वीणा व्याख्या पुस्तकमुद्रिकाः॥
सप्तजिह्वाऽऽह्वया मुद्रा विज्ञेया वह्निपूजने।
मत्स्यमुद्रा च कूर्म्माख्या लेलिहा मुण्डसंज्ञिका॥
महायोनिरिति ख्याता सर्वसिद्धिसमृद्धिदा।
शक्त्यर्चने महायोनिः श्यामादौ मुण्डमुद्रिका॥

मुंड मुद्रा और मत्स्य कूर्म्म एवं लेलिहा ये सब मुद्राएँ सर्वसाधारण पूजनमें काम आती हैं। तारा देवी के अर्चन में विशेषरूप से योनि, भूतिनी, बीज, दैत्य-धूमिनी, और लेलिहाना ये पांच मुद्राएँ कहीगई हैं। त्रिपुरसुन्दरी के पूजन में क्षोभिणी, द्राविणी, आकर्षिणी, वश्या, उन्मादिनी, महाङ्कुशा, खेचरी, बीज, योनि और त्रिखण्डा ये दश मुद्राएँ प्रशस्त हैं। अभिषेककार्य्य में कुम्भमुद्रा, आसन में पद्ममुद्रा, विघ्नदमनकार्य्यमें कालकर्णी मुद्रा, और जलशोधन कार्य्य में गालिनी मुद्राकी आज्ञा कीगई है। गोपालपूजन में वेणुमुद्रा, और नृसिंहपूजन में नारसिंही मुद्रा

मत्स्यकूर्मलेलिहाख्या मुद्रा साधारणी मता।
तारार्चने विशेषास्तु कथ्यन्ते पञ्चमुद्रिकाः॥
योनिश्च भूतिनी चैव वीजाख्या दैत्यधूमिनी।
लेलिहानेति संप्रोक्ताः पञ्चमुद्राः प्रकाशिताः॥
दशका मुद्रिका ज्ञेयास्त्रिपुरायाः प्रपूजने।
संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः॥
खेचरीवीजयोन्याख्याः त्रिखण्डा परिकीर्तिता।
कुम्भमुद्राऽभिषेके स्यात् पद्ममुद्राऽऽसने तथा॥
कालकर्णी प्रयोक्तव्या विघ्नप्रशमकर्म्मणि।
गालिनी च प्रयोक्तव्या जलशोधनकर्म्मणि॥
श्रीगोपालार्चने वेणुर्नृहरेर्नारसिंहिका।

कथित है। वराहदेव के पूजन में वाराही और हयग्रीव के अर्चन में हायग्रीवी मुद्रा प्रदर्शन करना योग्य है। श्रीराम के पूजन में धनुष् और बाणमुद्रा प्रशस्त समझी गई है। परशुरामके पूजन में परशु और सम्मोहनी मुद्रा कही है। आवाहन कार्य में वासुदेवमुद्रा, रक्षाकार्य्य में कुम्भमुद्रा और प्रार्थनाकाल में सर्वत्र प्रार्थना मुद्रा प्रयोग करनी योग्य है। श्रीगुरुदेव से पांचों सम्प्रदायोंके साधक अपने अपने अधिकार के अनुसार मुद्रा सीखलेवें, तन्त्रों में सब मुद्राओं के विस्तृत लक्षण प्रकाशित हैं। देव देवियों के प्रसन्न करनेयोग्य मुद्रा अनेक हैं जिनका वर्णन स्वतन्त्र स्वतन्त्र उपासना-पद्धति में प्राप्तव्य है। पञ्च उपासनाओं के अनु-

वाराहस्य च पूजायां वाराहाख्यां प्रयोजयेत् ॥
हयग्रीवाऽर्चने चैव हायग्रीवीं प्रदर्शयेत् ।
रामाऽर्चने धनुर्बाणमुद्रे परशुस्तथाऽर्चने ॥
परशुरामस्य विज्ञेया जगन्मोहनसंज्ञिका ।
वासुदेवाऽऽह्वयाऽऽह्वाने कुन्तमुद्रा तु रक्षणे ॥
सर्वत्र प्रार्थने चैव प्रार्थनाख्यां प्रयोजयेत् ।
यथाऽधिकारं शिक्षेयुः साम्प्रदायिकसाधकाः ॥
गुरोर्मुद्रालक्षणानि तान्त्रिकैर्वर्णितानि वै ।
देवदेवीप्रसादाय बह्व्यो मुद्राः प्रदर्शिताः ॥
या वर्णिताः पद्धतिषु तासु तासु मनीषिभिः ।
मुद्राश्च कथिताः पञ्चोपासनस्याऽनुसारतः ॥

सार कुछ मुद्राओं के नाम कहेगये हैं। जिस प्रकार देव देवियों को प्रसन्न करनेवाली मुद्राओं के नाम कहेगये उसीप्रकार ऋषियों के प्रसन्न करनेवाली मुद्राओं के नाम भी कहेजाते हैं। ज्ञानमुद्रा, भक्तिमुद्रा, तपोमुद्रा, कर्ममुद्रा, दानमुद्रा इन सब मुद्राओं से ऋषिगण प्रसन्न होते हैं। वरमुद्रा और अभयमुद्रा आदि से ऋषि देवता और पितर तथा लोकत्रयवासी प्रसन्न होते हैं।

तर्पणवर्णन।

(५४) देवतागण तर्पण द्वारा शीघ्र तृप्त होते हैं इस कारण इसका नाम तर्पण है। तर्पण निष्काम और सकाम भेदसे दो प्रकार का होता है। कामना के अनु-

---

यथा देवप्रसादाय मुद्राभेदा निरूपिताः।
तथर्षिप्रीणनार्थाय मुद्रा काचिन्निगद्यते॥
ज्ञानमुद्रा भक्तिमुद्रा कर्म्ममुद्रा तथैव च।
तपोमुद्रा दानमुद्रा ऋषीणां तुष्टिकारिकाः॥
मुद्रा वराऽभयप्रदाः प्रीणयन्ति जगत्त्रयम्।
देवर्षींश्च पितॄंश्चापि कस्य स्यादत्र संशयः॥
(५४) तर्पणाद्देवताप्रीतिस्त्वरितं जायते यतः।
अतस्तत्तर्पणं प्रोक्तं तर्पणत्वेन योगिभिः॥
सकामनिष्कामतया द्विभेदं तर्पणं मतम्।

सार तर्पण करने के द्रव्यभी स्वतन्त्र स्वतन्त्र होते हैं। तर्पण मन्त्रयोग का एक प्रधान अङ्ग है। इष्टतर्पण के अनन्तर ऋषितर्पण, अन्य देवतर्पण और पितृ-तर्पण करने की विधि है। तर्पण की विशेषता यह है कि विधिपूर्वक तर्पण करने से देवयज्ञ, भूतयज्ञ और पितृयज्ञ करने की आवश्यकता नहीं रहती। अपने इष्टदेव को शीघ्र प्रसन्न करने की इच्छा यदि कोई रक्खे तो विधिपूर्वक प्रतिदिन तर्पण कियाकरे। मधु से तर्पण करने से सकल अभीष्ट पूर्ण होते हैं, मन्त्र की सिद्धि होती है और सम्पूर्ण महापातक नष्ट हो जाते हैं। कर्पूरमिश्रित जलद्वारा मासमात्र तर्पण करने

सकामतर्पणद्रव्यं भिन्नं निर्दिश्यते बुधैः ॥
तर्पणं मन्त्रयोगस्य मुख्यमङ्गं निरूपितम्।
इष्टान्सन्तर्प्य प्रथमं देवर्षिपितरस्तथा ॥
सन्तर्प्याश्चैव गदितस्तर्पणस्य विधिः शुभः।
माहात्म्यञ्चास्य भवति विधिना तर्पितेन यत् ॥
न पितृदेवभूतानां यज्ञानुष्ठानमिष्यते।
अनिशं तर्पणं कार्य्यमात्मश्रेयोऽभिलाषुकैः ॥
तूर्णं हि स्वेष्टदेवस्य वाञ्छाद्भिश्च प्रसादनाम्।
मधुना तर्पणं कुर्य्यात्सर्वकामप्रपूरकम् ॥
मन्त्रसिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम्।
कर्पूरमिश्रितैस्तोयैर्मासमात्रं हि तर्पयेत् ॥
वशीकृत्य नृपान्सर्वान्भोगी स्याज्जीवनाऽवधि।

से समस्त राजाओं को वशमें करके सम्पूर्ण आयु को सुख से व्यतीत करता है। घृतसे तर्पण करने से पूर्ण आयु होती है । और आरोग्य प्राप्ति के लिये दुग्ध से तर्पण करना उचित है। अगरुयुक्त जलसे नित्य तर्पण करनेवाले सर्वदा सुख लाभ किया करतेहैं। नारिकेल जल से युक्त करके जल से तर्पण करने से निखिल अभीष्टोंकी सिद्धि होतीहै। मरिचामिश्रित जलसे तर्पण करनेवाले अपने शत्रुओं का नाश करते हैं । केवल उष्ण जल से तर्पण करने से शत्रु का उच्चाटन होता है। और उसके द्वारा शत्रु ज्वराक्रान्त होता है। यदि शत्रु का दुःख दूर करनेकी इच्छा हो तो दुग्धसे तर्पण करके उसके दुःख को शान्त करें। तर्पण के अनन्तर शतवार मन्त्रजप करके रोचना (हलदी) का चन्दन ललाट में लगाकर साधक जिसको देखे वही उसका क्रीत दास तुल्य होजाता है।

घृतैः पूर्णायुषः सिद्धयै दुग्धैरारोग्यसिद्धये ।
अगरुमिश्रितैस्तोयैः सर्वकालं सुखी भवेत् ॥
नारिकेलोदकैर्मिश्रैस्तोयैः सर्वार्थसिद्धये ।
मरीचमिश्रितैस्तोयैस्तथा शत्रून् विनाशयेत् ॥
केवलैरुष्णतोयैश्च शत्रुमुच्चाटयेत् क्षणात् ।
ज्वरारिष्टोभवेत्तेन दुग्धसेकात्समं नयेत् ॥
शताभिजप्तमात्रेण रोचनातिलकं नरः ।
कृत्वा पश्यति यं मन्त्री तं कुर्य्याद्दासवत्सुधीः ॥

हवनवर्णन ।

(५५) विना जप किये मन्त्रसिद्धि नहीं होती, विना हवन के फल लाभ नहीं होता और विना इष्ट-पूजन के अभीष्ट प्राप्त नहीं होता, इस कारण इन तीनों को अवश्य करना चाहिये । पूजा के द्वारा पूजा प्राप्त होती है, जपसे सिद्धि होती है एवं हवन करने से विभूति और निखिल सिद्धियां उपलब्ध होती हैं। अब नित्यहोमविधि का वर्णन कियाजाता है जिससे सब अर्थों की प्राप्ति होती है । प्रथम विधिपूर्वक पूजा करके बलिदान विधि करे और इसके अनन्तर होम और तर्पण साधकों को करना हितकर है और ब्राह्मण साधक बलिवैश्वदेव विधि भी करें । अर्घ्योदक से भूमि शोधन करके तीन रेखा खींचे। और विधिपूर्वक

(५५) नो सिध्यत्यजपान्मन्त्रो नाऽहुतश्च फलप्रदः ।
नानिष्टो ददते कामान् तस्मात्त्रितयमर्जयेत् ॥
पूजया लभते पूजां जपात् सिद्धिर्न संशयः ।
विभूतिश्चाग्निकार्य्येण सर्वसिद्धिश्च विन्दति ॥
नित्यहोमं प्रवक्ष्यामि सर्वार्थं येन विन्दति ।
सपर्य्यां सम्यगापाद्य बलिपूर्व्वं चरेद्विधिम् ॥
ततो होमं तर्पणञ्च चरेत्साधकसत्तमः ।
बलिवैश्वादिकञ्चैव ब्राह्मणः समुपाचरेत् ॥
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य तिस्रो रेखाः समालिखेत् ।

अग्नि लाकर "क्रव्यादेभ्यो नमः" इस मन्त्र का तथा मूलमन्त्र का उच्चारण करके कुण्ड में, स्थण्डिल में अथवा भूमि पर व्याहृतित्रय से अग्निस्थापन करे। स्वाहान्त मन्त्र से तीन बार हवन करके षडङ्ग हवन करे और देवी का आवाहन करके मूलमन्त्र से षोडश आहुति देवे। (यहां शक्ति उपासना को लक्ष्य करके देवी शब्द का प्रयोग कियागया है। इससे समझना यही उचित है कि वैष्णव, सौर्य्य, गाणपत्यादि उपासक सम्प्रदाय के साधक अपने अपने सम्प्रदायानुकूल इसी क्रम के अनुसार अपने अपने इष्टदेव का आवाहनादि करें। क्योंकि मन्त्रयोग पञ्चोपासनाप्रधान है और ऐसा ही लक्ष्य सम्पूर्ण ग्रन्थ में समझा जाय) इस प्रकार हवन करके स्तुति करे और इन्दु-

विधिवदग्निमानीय क्रव्यादेभ्यो नमस्तथा ॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य्य कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ।
भूमौ वा संस्तरेद्वह्निं व्याहृतित्रितयेन च ॥
स्वाहान्तेन त्रिधा हुत्वा षडङ्गहवनं चरेत् ।
ततो देवीं * समावाह्य मूलेन षोडशाहुतीः ॥
हुत्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य विसृजेदिन्दुमण्डले ।

* शक्त्युपासनायाः लक्ष्यन्निधाय देवीशब्दस्य प्रयोगोऽनुष्ठितः, अतोऽत्रायमेवोचितो विचारः यत् वैष्णव-सौर्य्य-गाणपत्याद्युपासक-सम्प्रदायसाधका अनेनैव क्रमानुसारेण स्वस्वसम्प्रदायानुकूलं स्वस्वेष्टदेवतावाहनादिकं कुर्युः, कथं यत् मन्त्रयोगः पञ्चोपासनाप्रधानोऽस्ति। अथैवंविध एव लक्ष्यः सकले ग्रन्थे बोध्यः ।

मण्डल में उसका विसर्जन करदेवें। पञ्चमहायज्ञ का साधन विना किये साधक को सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होसक्ती, पञ्चमहायज्ञ त्रिविध सिद्धि विधायक है। पञ्चाङ्ग सेवन द्वारा ब्रह्मयज्ञ की सफलता होती है। नित्य होमके द्वारा इष्टदेव प्रसन्न होते हैं और सब देव देवियों की तृप्ति होती है। पञ्चमहायज्ञ त्रिविध शुद्धिप्रद होने के कारण योगाङ्ग में उनका सम्बन्ध रक्खागया है। मोक्षाभिलाषी उपासक को उचित है कि नित्य होम कियाकरे, चाहे वैष्णव शाक्त शैव गाणपत्य सौर्य्य किसी सम्प्रदाय का योगी हो सब के लिये हवन करना परम हितकर है। प्रथम इष्टदेव के प्रीत्यर्थ आहुति देकर अन्य देव देवियों को इष्ट-देव के अङ्गीभूत समझकर उनके संवर्द्धनार्थ भी आहुति प्रदान करना उचित है।

न विना पञ्चयज्ञेन सिद्धिमाप्नोति साधकः ॥
त्रिविधाः सिद्धयः पञ्च महायज्ञेन शाश्वतम्।
पञ्चाङ्गसेवनेनैव ब्रह्मयज्ञफलागमः ॥
स्वेष्टदेवप्रसादः स्यान्नित्यं होमानुशीलनात्।
देवा देव्यश्च तृप्यन्ति होमेनाऽनेन निश्चितम् ॥
योगाङ्गयुक्तास्ते यज्ञा यतः शुद्धिविधायकाः।
अनुष्ठेयः स यत्नेन मोक्षप्राप्त्यभिलाषुकैः ॥
साम्प्रदायिकमाङ्गल्यो नित्यहोमो विधीयते।
इष्टदेवप्रीणनाय हुत्वा पूर्वं यथाविधि ॥
ततश्चान्यान्प्रीणयितु हवनं परिकीर्तितम् ॥

बलिवर्णन।

(५६) इष्ट उपासना में विना विघ्नों की शान्ति के सफलता नहीं होती। विघ्नों की शान्ति के लिये बलिदान कियाजाता है। बलि के साधन में आत्मबलि सब से श्रेष्ठ है। आत्मबलि द्वारा अहङ्कार का नाश होकर साधक कृतकृत्य होता है। बलिके साधन में काम क्रोधादिक रिपुओं की बलि द्वितीय स्थानीय है। ये सब अन्तर्याग से सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं। पूजाके अनन्तर अवशिष्ट द्रव्यद्वारा जो बलि दीजाय तो इष्टदेव की प्रसन्नता होती है। किसी किसी सम्प्रदाय में इष्टदेवकी प्रसन्नता के अर्थ उत्तम फलों की बलि दीजाती है। किसी किसी सम्प्रदाय में यज्ञपशुओं की बलिदेनेकी भी विधि प्रचलित है। ये सब

(५६) बलिदानाद्विघ्नशान्तिः स्वेष्टदेवस्य पूजने।
बलिदानेषु सर्वेभ्यः श्रेष्ठ आत्मबलिः स्मृतः॥
एतेन नष्टाऽहङ्कारः कृतार्थो मानवो भवेत्।
कामक्रोधादिशत्रूणां बलिरत्र द्वितीयकः॥
अन्तर्यागेन सम्बद्धाः सर्वे चैते प्रकीर्तिताः।
देवान्सम्पूज्य यत्नेन तद्द्रव्यैर्हि बलिक्रिया॥
इष्टदेवाः प्रसीदन्ति विधिनाऽनेन निश्चितम्।
सम्प्रदाये क्वचिद्देवप्रीणनाय विलोक्यते॥
फलोपहारस्य विधिर्वर्णितो मुनिपुङ्गवैः।
क्वचिद्यज्ञपशोरेव बलिदानविधिः स्मृतः॥

बलि के भेद त्रिगुणभेद से मानेगये हैं। इष्टदेव की प्रसन्नता के अर्थ बलि देकर समस्त संसार के भूत-मात्र की तृप्ति के अर्थ बलि देना उचित है। पूजा क-रने के पश्चात् अवशिष्ट फल पुष्प और सुगन्धि द्रव्य से भक्त अपने इष्टदेव को बलि समर्पण अवश्य करे। बलिदान देने से निस्सन्देह इष्टदेव प्रसन्न होते हैं और बलिदान से सम्पूर्ण विघ्न दूर होते हैं। प्रथम विधि-पूर्वक अपने इष्टदेव को बलि समर्पण करके अन्य देवताओं को बलि देवे और भक्तियुक्त साधक उसके अनन्तर पितरों के तृप्त्यर्थ बलिदान करे। ब्रह्मा और विश्वेदेवों के लिये घरमें बलिदान करना उचित है। धन्वन्तरि के लिये बलिदान उत्तर दिशामें करना

बलिभेदा हि निर्दिष्टास्त्रिगुणस्याऽनुसारतः।
इष्टदेवप्रसादाय बलिं दत्त्वा यथाविधि॥
भूतानां तृप्तये पश्चाद्बलिदानविधिः स्मृतः।
पूजाशिष्टैः फलैः पुष्पैस्तथा द्रव्यैः सुगन्धिभिः॥
बलिं निजेष्टदेवायाऽवश्यं भक्तः समर्पयेत्।
बलिप्रदानतः स्वेष्टदेवो नूनं प्रसीदति॥
विघ्नाः सर्वे प्रणश्यन्ति बलिदानप्रभावतः।
प्रथमं स्वेष्टदेवाय बलिं दद्याद्यथाविधि॥
भक्त्या ततोऽन्यदेवेभ्यः पितॄणां तृप्तये ततः।
ब्रह्मणे गृहमध्ये तु विश्वेदेवेभ्य एवं च॥
धन्वन्तरिं समुद्दिश्य प्रागुदीच्यां बलिं क्षिपेत्।

चाहिये। इन्द्र के लिये पूर्व दिशा में, यम के लिये दक्षिण दिशा में, वरुण के लिये पश्चिम दिशामें और उत्तर दिशा में चन्द्रमा के लिये बलिदान करना चाहिये। गृहद्वारपर धाता और विधाता को बलि देने की विधि है। अर्य्यमाके लिये और ग्रहों के लिये गृह के चारोंतरफ बलिदान करना विहित है। नक्तञ्चरों (राक्षसों) के लिये आकाशके तरफ बलि देनाचाहिये। और पितरों के तृप्त्यर्थ दक्षिणाभिमुख होकर बलिदान करना चाहिये। गृहस्थ साधक तद्गत चित्त होकर चित्त को स्थिर करे और जल लेकर आचमन करे-पुनः जल लेकर उन उन देवताओं को उद्देश्य करके तत्तत्स्थान में बलिदान करे। इस प्रकार गृहस्थ पवित्र

प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय बलिमाहरेत्॥
प्रतीच्यां वरुणायैव सोमायोत्तरतो बलिम्।
दद्याद्धात्रे विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य च॥
अर्य्यम्णे च बलिं दद्यात् ग्रहेभ्यश्च समन्ततः।
नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत्॥
पितॄणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखः स्थितः।
गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः॥
ततस्तोयमुपादाय तिष्ठेदाचमनाय वै।
स्थानेषु निक्षिपेत् प्राज्ञस्तास्ता उद्दिश्य देवताः॥
एवं ग्रहबलिं कृत्वा गृहे गृहपतिः शुचिः।
आप्यायनाय भूतानां कुर्य्यादुत्सर्गमादरात्॥

होकर ग्रहबलि देवे। पुनः भूतों की तृप्ति के लिये, श्वा श्वपच और पक्षियों की तृप्ति के लिये भूमि पर अन्न रक्खें, यह वैश्वदेव विधि प्रातः और सन्ध्या के समय करना उचित है।

यागवर्णन।

(५७) अन्तर्याग और बहिर्याग भेद से याग दो प्रकार का होता है। याग के उपचार षोडश दश और पांच भेद से त्रिविध होते हैं। (मतान्तर से चार भेद भी हैं) याग के उपचारों में अध्यात्म लक्ष्य रखना और भी हितकर है। अन्तर्याग की महिमा सर्व्वोपरि है। मानस याग, मानस जप और मानस कर्म्म के लिये कालशुद्धि देशशुद्धि और शरीरशुद्धि की कुछ भी अपेक्षा नहीं रहती, वह सब समय में स-

---

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि।
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातरुदाहृतम्॥

(५७) अन्तर्यागो बहिर्यागश्चेति यागो द्विधा मतः।
अत्रोपचारास्त्रिविधा दश षोडश पञ्च च॥
अत्राध्यात्मं गृहीत्वैव लक्ष्यं स्याच्छ्रेयसायुतः।
अन्तर्यागस्य महिमा सर्वश्रेष्ठः प्रकीर्तितः॥
नाऽपेक्षिता देशशुद्धिर्नापि कालशरीरयोः।
यागे जपे मानसे वै तथा कर्मणि निश्चितम्॥
सर्वदा शक्यते कर्तुं मानसी निखिला क्रिया।

मानरूप से होसक्ता है। षोडश दिव्यदेशों में से किसी देश के अवलम्बन से याग का साधन करना उचित है। स्थूलदेश से सूक्ष्मदेश कोटिगुण फलप्रद है। याग की सिद्धिके अनन्तर जपकी सिद्धि के साथही साथ ध्यानकी सिद्धि होती है और ध्यानकी सिद्धि से समाधि की प्राप्ति होती है। यागकी सिद्धिद्वारा देवता का साक्षात्कार भी होता है। दिव्यदेशों में इष्ट देव का आविर्भाव होता है।

कर्मकाण्ड—परायण मनुष्य जिसका वस्तुतः रूप नहीं है, परन्तु उसके रूप की कल्पना करके पूर्वोक्त स्थानों में भगवती शिवा की पूजा करते हैं। जिस प्रकार गौ के सर्व अङ्गों में दुग्ध रहता है, परन्तु वह केवल स्तनद्वारा ही निःसृत होता है उसीप्रकार देवता सर्वव्यापक होनेपर भी केवल प्रतिमा आदि केन्द्र

दिव्यदेशेषु कस्यापि देशस्चाश्रयतो भवेत् ॥
यागस्य साधनं, स्थूलात् सूक्ष्मे कोटिगुणं फलम्।
योगसिद्ध्या जपः सिद्धो ध्यानसिद्धिस्ततःपरम् ॥
ततः समाधिसिद्धिः स्यादेतया देवदर्शनम्।
आविर्भवन्तीष्टदेवा दिव्यदेशेषु नित्यशः ॥
एषु स्थानेषु देवेशीं यजन्ति परमां शिवाम्।
अरूपां रूपिणीं कृत्वा कर्म्मकाण्डरता नराः ॥
गवां सर्व्वाङ्गजं क्षीरं स्रवेत् स्तनमुखाद् यथा।
तथा सर्व्वात्मको देवः प्रतिमादिषु राजते ॥

स्थानों में उनका विकाश होता है। उस प्रतिमा में—स्वरूप-सादृश्य होने के कारण, पूजा की विशेषता होने से और साधकों के विश्वास से, देवता का सान्निध्य होता है।

(पूजोपचारवर्णन)

(५८) मानस याग सर्वोत्तम है और वाह्यपूजा मध्यम है। प्रथम मूलमन्त्र का उच्चारण करके पुनः देयवस्तु अर्थात् जो वस्तु देवता को अर्पण करना है उसका उच्चारण करे, पुनः सम्प्रदान का अर्थात् जिसको वस्तु अर्पण कियाजाय—उसका उच्चारणकर के पुनः समर्पणार्थक पद का उच्चारण करें। इस प्रकार सब उपचार देवता को अर्पण करना चाहिये। पूजा में एकविंशति, षोडश, दश और पञ्च इसप्रकार चार उपचार के भेद योगतत्त्वज्ञ महर्षियों ने किये हैं।

आभिरूप्याच्च विम्बस्य पूजायाश्च विशेषतः।
साधकस्य च विश्वासात् देवतासन्निधिर्भवेत् ॥

(५८) उत्तमो मानसो यागो मध्यमं वहिरर्चनम्।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य पश्चाद्देयमुदीरयेत् ॥
सम्प्रदानं तदन्तेतु त्यागार्थकपदं ततः।
एवं क्रमेण वै भक्त उपचारान् प्रकल्पयेत् ॥
उपचारा विनिर्दिष्टाः पूजायामेकविंशतिः।
मुनिभिर्योगतत्त्वज्ञैर्दश षोडश पञ्च च ॥

(एकविंशत्युपचार)

(५६) आवाहन, स्वागत, आसन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, उपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, माल्य, आर्ति, नमस्कार और विसर्जन, ये एकविंशति उपचार हैं।

(षोडशोपचार)

(६०) आवाहन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, आर्ति, प्रणाम, ये षोडशोपचार पूजा की सामग्री हैं।

(दशोपचार)

(६१) पाद्य, अर्घ्य, स्नान, मधुपर्क, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य, ये दश उपचार हैं।

---

(५६) आवाहनं स्वागतञ्च ह्यासनं स्थापनं तथा।
पाद्यमर्घ्यं तथा स्नानं वसनञ्चोपवीतकम्॥
भूषणं गन्धपुष्पे वै धूपदीपौ तथैव च।
नैवेद्याचमने चैव ताम्बूलं तदनन्तरम्॥
माल्यं नीराजनं चैव नमस्कारविसर्ज्जने।
(६०) आवाहनं स्थापनञ्च पाद्यमर्घ्यं तथैव च॥
स्नानं वस्त्रं भूषणं वै गन्धपुष्पे च धूपकम्॥
दीपस्तथा च नैवेद्यं तथैवाचमनं भवेत्।
नीराजनञ्च ताम्बूलं प्रणाम इति षोडश॥
(६१) पाद्यमर्घ्यं तथा स्नानं मधुपर्काचमौ तथा।
नैवेद्यान्ता गन्धमुखा उपचारा दश क्रमात्॥

(पञ्चोपचार)

(६२) गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य ये पञ्चोपचार हैं इनसे साधक को अखण्ड फल की प्राप्ति होती है, और अन्त में वह साधक कैवल्य लाभ करता है।

(उपयागवर्णन)

(६३) विज्ञानवेत्ता तन्त्र शास्त्र के रहस्यों के जाननेवाले योगियों ने ब्रह्मयाग, और जीवयाग भेद से दो भेद उपयाग के किये हैं। वेद, स्मृति, पुराण और तन्त्रों के पाठ करने से ब्रह्मयाग का साधन होता है। ब्रह्मयाग के साधन से साधक अपने इष्ट देवता का स्वरूप जानने में समर्थ होता है इसमें सन्देह नहीं। अपना कल्याण चाहनेवाले साधक वैष्णव, गाणपत्य, शाक्त, शैव और सौर्य सभी अपनी अपनी

---

(६२) गन्धपुष्पे तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च।
अखण्डं फलमासाद्य कैवल्यं लभते ध्रुवम्॥

(६३) विज्ञानविद्वरैस्तन्त्रशास्त्रतात्पर्य्यवेदिभिः।
ब्रह्मयागो जीवयाग उभौ मार्गौ निरूपितौ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां तन्त्राणां चैव पाठतः।
उत्पद्यते ब्रह्मयागो यद्द्वारा साधकोत्तमः॥
निजेष्टदेवताज्ञाने समर्थो जायते ध्रुवम्।
वैष्णवा गाणपत्या वा शाक्ताः शैवास्तथैव वा॥
सौरा वा साधकाः सर्व्वे स्वस्वकल्याणकाङ्क्षिणः।
पठेयुर्नियतं गीतां श्रीकृष्णमुखनिर्गताम्॥

उपासना के अनुसार भगवद्गीता, भगवतीगीता, आदित्यगीता, शिवगीता और गणेशगीता का पाठ करें। ये गीतायें अति उत्तम हैं, और इनके पाठ से स्वाध्याय पुष्ट होता है, जो साधक अपने अधिकार के अनुसार गीतापाठ करते हैं वे धर्म अर्थ काम मोक्षरूपी चतुर्वर्ग लाभ करते हैं। सब प्राणियों की दया के अथवा उनकी रक्षा के लिये, वेदज्ञाता ब्राह्मणों को ब्रह्मा का मुख समझकर, और अतिथि को अपने इष्टदेव के तुल्य समझकर जो भोजन, वसन, जल आदि उनकी तृप्ति के लिये दियाजाय उसे जीवयाग कहते हैं। इन ब्रह्मयाग और जीवयाग के साधन से साधक इस लोक में और परलोक में अनन्त कल्याण प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

गीतां भागवतीञ्चैवादित्यगीतां तथा पुनः ।
शिवगीतां तथा गीतां गाणेशीं वा यथाक्रमम् ॥
एता हि परमोत्कृष्टास्तेषां स्वाध्यायपोषिकाः ।
अनुसृत्याधिकारं स्वं गीतापाठे रतो नरः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं चतुर्व्वर्गं समश्नुते ।
सर्व्वेषां प्राणिनामत्र दयया रक्षयापि च ॥
मुखन्तु ब्रह्मणो मत्वा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
अतिथींश्चेष्टदेवेन समान् बुद्ध्वा यदर्प्यते ॥
भोजनं वसनं पानं जीवयागः स उच्यते ।
आभ्यां द्वाभ्यां साधनाभ्यामस्मिँल्लोके परत्र च ॥

अतः इन दोनों यज्ञों का साधन अवश्य साधक को करना चाहिये।

जपवर्णन।

(६४) जो मनन करने से त्राण करे उसे मन्त्र कहते हैं अर्थात् जिसके जप द्वारा साधक रक्षित हो वही मन्त्र है। जप करते करते साधक सिद्धि प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं। सांसारिक विषयों से मनको हटाकर मन्त्र के अर्थ का अनुगमन करता हुआ, और उच्चारण में न बहुत शीघ्रता और न विलम्ब किन्तु मध्यम वृत्ति से जप करे। मन्त्रका वारंवार आवर्त्तन करने को जप कहते हैं, वह तीन प्रकार का होता है, यथा—मानस, उपांशु और वाचिक।

लभन्ते मानवाः शर्म्म सत्यमेतन्न संशयः।
उभौ नित्यमनुष्ठेयाववश्यं साधकोत्तमैः॥

(६४) मननात्त्रायते यस्मात् तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्त्तितः।
जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः॥
मनः संहृत्य विषयान् मन्त्रार्थगतमानसः।
न द्रुतं न विलम्बेन जपेन्मौक्तिकहारवत्॥
जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः।
स्वकर्णगोचरो यस्तु स जपो मानसः स्मृतः॥
उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः परिकीर्त्तितः।

जिस मन्त्र को जप करनेवाला भी न सुनसके वह मानसिक जप है। उपांशु जप उसे कहते हैं कि जो जप करनेवाले को सुनाई पड़े। और जो मन्त्र वचन से उच्चारण किया जाय और दूसरों को सुनाई पड़े वह वाचिक जप है। वाचिक जप से उपांशु जप दशगुण अधिक फलवान् है, जिह्वाजप (उपांशु) शतगुण और मानस जप का सहस्रगुण अधिक फल है। अति शनैः शनैः जप करने से रोग होताहै, और अति शीघ्रतासे जपकरने से धन क्षय होताहै। अतः परस्परमें मिला हुआ मौक्तिकहार की नाईं जप करें। जो साधक जप करते समय मन, शिव, शक्ति और वायु का संयम न करसके, वह चाहे कल्पपर्यन्त भी जप क्यों न करे परन्तु सिद्धि दुर्लभही है। मन्त्र के पहले जातसूतक होता है, और अन्त में सूतसूतक होता है। दो सूतक

मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा स जपो वाचिकः स्मृतः ॥
उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः।
जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥
अतिह्रस्वो व्याधिहेतुरतिदीर्घो वसुक्षयः।
अक्षराक्षरसंयुक्तं जपेन्मौक्तिकहारवत् ॥
मनोऽन्यत्र शिवोन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिद्ध्यति मन्त्रराजः कल्पकोटिशतैरपि ॥
जातसूतकमादौ स्यादन्ते च सूतसूतकम्।
सूतकद्वयसंयुक्तो यो मन्त्रः स न सिद्ध्यति ॥

युक्त मन्त्र से सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होती है। गुरु की किसी प्रकारसे विशेष सेवा करके विचारपूर्व्वक साधक को जप करना उचितहै। जिस मन्त्रमें दो सूतक न हों, वह मन्त्र सिद्धिदायक होता है। इस कारण मन्त्र को ध्रुव से युक्त करके अष्टोत्तरशत अथवा सात वार जप करके और पुनः जपान्तमें भी वैसाही करके चतुर्वर्गफल प्राप्ति के लिये जपकरना उचित है। मन्त्र के आदि और अन्त में ब्रह्म वीजसे युक्त करके सात वार जप करना चाहिये, जिससे दोनों सूतकों का दोष निवृत्त होजावे। मन्त्र का अर्थ, मन्त्र को चेतन करने की विधि और योनिमुद्रा को जो न जानता है वह शतकोटि मन्त्र का जप करके भी सिद्धि लाभ नहीं करसक्ता। जिन

गुरोस्तत्र हितं कृत्वा मन्त्रं यावज्जपेद्धिया।
सूतकद्वयनिर्म्मुक्तः स मन्त्रः सर्व्वसिद्धिदः॥
तस्मादेवं प्रयत्नेन ध्रुवेण पूटितं मनुम्।
अष्टोत्तरशतं वापि सप्तवारं जपादितः॥
जपान्ते च ततो जप्याच्चतुर्व्वर्गफलाप्तये।
ब्रह्मवीजं मनोर्दत्त्वा चाद्यन्ते सुसमाहितः॥
सप्तवारं जपेन्मन्त्रं सूतकद्वयमुक्तये।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः॥
शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते।
लुप्तवीजाश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं ध्रुवम्॥
मन्त्राश्चैतन्यसहिताः सर्व्वसिद्धिकराः स्मृताः।
चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्तवर्णास्तु केवलाः॥

मन्त्रों में वीज न हो वे कभी भी सिद्धिदायक नहीं होसक्के। और चैतन्ययुक्त मन्त्र अवश्य सिद्धिदायक है। विना चेतन किये हुए केवल अक्षरमय मन्त्र के अनन्त कोटि जप करने से भी सिद्धि की आशा नहीं है। मन्त्रोच्चारण करने में जैसा स्वाभाविक यथार्थ स्वरूप उसका है, उसी प्रकार यथावत् रूपसे शत, सहस्र या लक्ष जप करने से कोटि जप के सदृश फल होता है। इससे हृदय की ग्रन्थि खुलजाती है समस्त अवयव प्रवृद्ध होते हैं आनन्दाश्रु और रोमाञ्च साधक को होता है देवता का आवेश होता है। उसकी वाणी गद्गद होजाती है इसमें सन्देह नहीं।

(साधनस्थान वर्णन)

(६५) विष्णु, सूर्य्य, शक्ति, गणपति और शिव उपासकों को उचित है कि देवमन्दिर अथवा साधन

फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटिशतैरपि।
मन्त्रोच्चारे कृते यादृक् स्वरूपं प्रथमं भवेत्॥
शते सहस्रे लक्षे वा कोटिजापेन तत्फलम्।
हृदये ग्रन्थिभेदश्च सर्व्वावयववर्द्धनम्॥
आनन्दाश्रूणि पुलको देवावेशो भवेद्ध्रुवम्।
गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः॥

(६५) विष्णोः सूर्यस्य शक्तेश्च विघ्नेशस्य शिवस्य च
उपासनापरैः कार्यं स्थित्वा वै देवमन्दिरे॥
पूते च विजने गेहे साधनं शुभलक्षणम्।

उपयोगी पवित्र एकान्त घर में बैठकर साधन करें। साधनस्थान गोमय गंगाजल आदि से संशोधित रहना उचित है। और उत्तमभावपूर्ण चित्रों से परि-शोभित रहना उचित है। जिससे चित्त में पवित्रता उत्पन्न हो। साधनगृह में तामसिक और राजसिक कार्य्य तथा असत् पुरुषों का प्रवेश होना उचित नहीं है। मोक्षाभिलाषी साधक गंगातट, पञ्चवटी, अरण्य, श्मशान, तीर्थ आदि प्रदेशों को स्वस्व सम्प्रदाय के अनुसार सेवन करके साधन करें। विशेष सिद्धि लाभ करने की इच्छा हो तो भूगर्त में (भूमि के अंतर्गत) योगगुहा बनाकर निरुपद्रव होकर साधन करे। योग-गृह ऐसा होना उचित है कि जिसमें कोई विघ्न हो ही नहीं सके और बाहिर्जगत् से उसका सम्बन्ध न रहे।

गोमयैगङ्गापानीयैः शोध्यं साधनसद्म तत्॥
शोभितं चैव कर्तव्यं चित्रैर्भावभरैः शुभैः।
प्राप्येत येन चित्तस्य पूतता साधकैः स्फुटम्॥
रजस्तमोभ्यां शुक्तं यत्र कुर्यात्तत्र कर्म तत्।
मोक्षं कामायमानेन साधनीयः प्रयत्नतः॥
गङ्गातीरे पञ्चवट्यामरण्ये च श्मशानके।
तीर्थे च सम्प्रदायस्य चात्मनो ह्यनुसारतः॥
भूगर्ते च तथा योगगुहायामनुपद्रुतैः।
साधनीयः प्रयत्नेन श्रेष्ठसिद्ध्यभिलाषुकैः॥
योगसद्म विधातव्यं प्रत्यूहो यत्र नो भवेत्।
असंस्पृष्टं च विषयैर्विश्वोत्थैर्निरापदम्॥

(साधनाधिकार वर्णन)

(६६) विष्णु सूर्य्य शक्ति गणेश और शिव उपासक में से किसी सम्प्रदाय का साधक हो बिना गुरूपदेश के साधन करने से विफलता होगी। उपनिषद्, आर्षसंहिता, पुराण, तन्त्र, और मन्त्रशास्त्र में अनेक मन्त्र वर्णित हैं और पञ्च उपासनाओं के अनेक रूपों का वर्णन शास्त्रों में पाया जाता है परन्तु यथाधिकार मन्त्र और देवता का निर्व्वाचन करना ग्रन्थ की सहायता से नहीं होसक्ता। जिस प्रकार दीपद्वारा रात्रि का अन्धकार दूर नहीं होसक्ता, सूर्य्य देव के प्रकाश से ही रात्रि का अन्धकार दूर होसक्ता है। उसी प्रकार केवल श्रीगुरुदेव के मुखारविन्द से ही साधक को स्व स्व साधनाधिकार प्राप्त होसक्ता है।

---

(६६) उपासको भवेद्यस्य सम्प्रदायस्य कस्यचित्।
विना गुरूपदेशेन नैष्फल्यं साधने भवेत्॥
पुराणतन्त्रशास्त्रेषु संहितोपनिषत्सु च।
वर्णितं विविधं रूपं पञ्चोपासनभेदतः॥
यथाधिकारं मन्त्राणां देवतायाश्च निर्णयः।
न ग्रन्थैः साध्यते किन्तु गुरोरेवोपलभ्यते॥
नैशं तमोऽपनेतुं सूर्यः शक्तो न दीपचन्द्राद्याः।
तद्वद्यथाधिकारं शक्ता गुरवो विनयनाय॥
विना गुरूपदेशेन मन्त्रयोगस्य साधने।

विना गुरूपदेश के मन्त्र योगी का साधन करना निष्फल और अहितकर है।

(मन्त्रसिद्धि का उपाय)

(६७) विशेष प्रकार से पुरश्चरणादि द्वारा यदि मन्त्रसिद्धि न हो तो पुनः पूर्ववत् करे। उससे यदि मन्त्रसिद्धि न हो तो तृतीय वार और करे। तृतीय वार के पश्चात् भी मन्त्रसिद्धि न होने पर शिव-कथित भ्रामण, रोधन, वशीकरण, पीडन, शोधन, पोषण और दाहन इन सात प्रकार के उपायों को क्रमशः अवलम्बन करे। इन सात प्रकार के उपायों का तन्त्र शास्त्रों में विस्तृत वर्णन है सो आवश्यक होने पर साधक को उचित है कि तन्त्रशास्त्रज्ञ श्री गुरुदेव से शिक्षा प्राप्त करे।

नैष्फल्यं समवाप्नोति साधकः साधनोन्मुखः ॥

(६७) मन्त्रे सम्यक् प्रजपिते यदि सिद्धिर्न जायते।
पुनस्तथैव कर्तव्यं ततः सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥
भूयोऽप्यनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते।
पुनस्तथैव कर्तव्यं ततः सिद्धो न संशयः ॥
पुनः सोऽनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते।
उपायास्तत्र कर्तव्याः सप्त शङ्करभाषिताः ॥
भ्रामणं रोधनं वश्यं पीडनं शोषपोषणे।
दहनान्तं क्रमात्कुर्य्यात् ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥

(पञ्चाङ्गशुद्धि)

(६८) अपनी, स्थान की, मन्त्र की, पूजा सामग्री की और देवता की शुद्धि साधक जबतक न करलेवे, तबतक वह पूजा क्या करसक्ता है। जो पूजा विना पञ्चशुद्धि के कीजाती है, उसका फल केवल अभिचारमात्र है। स्नान, भूतशुद्धि, प्राणायाम और सकल षडङ्गन्यास से आत्मशुद्धि होती है। संमार्जन अर्थात् भूमिझाड़ना, लीपना वितान (चाँदनी) धूप दीप पुष्प माल्य आदिसे शोभित और विविध वर्णों से भूषित करना, इस प्रकार स्थानशुद्धि होती है। मूलमन्त्र के अक्षरों को मातृकावर्ण से संयुक्त करके दो वार क्रम और उत्क्रम से पाठ करने से मन्त्रशुद्धि हुआ करती है। पूजापदार्थ को जल से धोकर और

---

(६८) आत्मस्थानमन्त्रद्रव्यदेवशुद्धिर्यथाक्रमात् ।
यावन्न कुरुते भक्तस्तस्य देवार्चनं कुतः ॥
पञ्चशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ।
स्नानेन भूतशुद्ध्या च प्राणायामादिभिस्तथा ॥
षडङ्गाद्यखिलन्यासैरात्मशुद्धिरुदीरिता ।
सम्मार्जनानुलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत् शुभम् ॥
वितानधूपदीपादिपुष्पमाल्यादिशोभितम् ।
पञ्चवर्णरजोभिश्च स्थानशुद्धिरितीरितम् ॥
ग्रथित्वा मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च ।
क्रमोत्क्रमाद्द्विरावृत्त्या मन्त्रशुद्धिरितीरितम् ॥

मूलमन्त्र से विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा दिखलावे तो द्रव्यशुद्धि होती है । मन्त्रज्ञसाधक मूलमन्त्र से पीठदेवी का प्रतिष्ठापन करे, पुनः पुष्प-माल्य धूपादि समर्पण करके जलसे तीन वार उसे प्रोक्षण करने से देवशुद्धि होती है। इस प्रकार पञ्च शुद्धि विधान करके पूजा करनी उचित है।

(सिद्धिवर्णन)

(६६) वासना जीवों में स्वभावसिद्ध होती है। यद्यपि वासनाक्षय के विना मुक्ति नहीं होसक्ती, परन्तु वासना का अनादिसम्बन्ध रहने के कारण मध्यम अधिकारियों में तक उसका सम्बन्ध रहता है। सुतरां अधम और मध्यम, दोनों अधिकारियों के लिये सिद्धियों की आवश्यकता रहती है। मन्त्रयोगी मन्त्र-

पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रैर्विधानतः ।
दर्शयेद्धेनुमुद्रादीन् द्रव्यशुद्धिः प्रकीर्तिता ॥
पीठदेवीं प्रतिष्ठाप्य साधको मन्त्रविद्वरः ।
मूलमन्त्रेण माल्यादीन् धूपादीनुदकेन च ॥
त्रिवारं प्रोक्षयेद्विद्वान् देवशुद्धिरितीरितम् ।
पञ्चशुद्धिं विधायेत्थं पश्चात् पूजां समाचरेत् ॥

(६६) स्वभावसिद्धा जीवानां वासनेति मुनेर्मतम् ।
तन्नाशेन विना मुक्तिप्राप्तिः परमदुष्करा ॥
परं तस्या अनादित्वान्मध्यमैरधिकारिभिः ।
सम्बन्धो हि विनिर्दिष्टो नातः पूर्वं निवर्तते ॥
अपेक्षिता सा सुतरां मध्यमैरधमैरपि ।

शुद्धि द्वारा,हठयोगी तपसिद्धि द्वारा,लययोगी संयम-सिद्धिद्वारा ऐश्री विभूतियों को लाभ किया करते हैं। मन्त्रयोग में विशेषता यह है कि उसमें अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत त्रिविध शुद्धियों की प्राप्ति होती है। मन्त्रसाधन द्वारा देव देवीगण स्वतः ही वशीभूत होजाते हैं। और मन्त्रयोग के सिद्धिप्राप्त योगी को संसार के सब वैभव सुलभ होजाते हैं। महादेवजीने कहा है कि मन्त्रशुद्धि क्रियाशुद्धि और द्रव्यशुद्धि के साथ जो साधन कियाजाय, उस से सब प्रकार की ऐश्री सिद्धियों का लाभ साधक कर सक्ता है। और ऐसे साधन में विफलता होतीही नहीं।

(मन्त्रभेदवर्णन)

(७०) उपासनाभेद से वीजमन्त्र अलग अलग

मन्त्रयोगी मन्त्रसिद्ध्या तपःसिद्ध्या हठान्वितः ॥
ऐशीं विभूतिमाप्नोति लययोगी च संयमैः ।
मन्त्रयोगस्य माहात्म्यं कथितं वेदविद्वरैः ॥
यत्नेनैवाधिगम्यन्ते त्रिविधाः शुद्धयो जनैः ।
मन्त्रसाधनतो देवा देव्यः संयान्ति वश्यताम् ॥
विभवाश्चैव जगतो यान्ति तस्योपभोग्यताम् ।
यत्साधनं क्रियाशुद्ध्या शुद्ध्या वै द्रव्यमन्त्रयोः ॥
विभूतयोऽधिगम्यन्ते महादेववचो यथा ।
एतेन साधनेनाऽत्र वैफल्यं नैव जायते ॥
(७०) उपासनाविधेर्भेदाद्वीजमन्त्राः पृथक् पृथक् ।

हैं। यथा—कृष्णवीज, रामवीज, शिववीज, गणपति-वीज इत्यादि ये सब आठ प्रकार मूलवीज के अतिरिक्त हैं। पुनः वीजके साथ मूलवीज मिलकर, अथवा एक वीज के साथ अन्य वीज मिलने से मन्त्रों की शक्ति का वैचित्र्य उत्पन्न होता है और पुनः मन्त्र शाखा और पल्लव से संयुक्त होने पर अन्यभाव को धारण करता है। मन्त्रविशेष में वीज शाखा और पल्लव तीनों होते हैं। शान्ति पुष्प है, इष्ट साक्षात्कार फल है, शाखा और पल्लव केवल भावमय हैं और शक्ति वीजमें निहित रहती है। कोई कोई मन्त्र वीज-रहित और शाखा पल्लव से युक्त रहता है। वह भाव प्रधान मन्त्र कहाता है। साधक की प्रकृति प्रवृत्ति

कृष्णवीजं रामवीजं शिववीजमथापरम् ॥
गणेशवीजमित्यष्ट वीजेभ्यश्चापरं मतम् ।
मूलवीजेन संयोगाद्वीजमन्त्रस्य चैव वा ॥
एकवीजेनान्यवीजमेलनाज्जायते ध्रुवम् ।
वैचित्र्यं मन्त्रशक्तीनां वदन्तीत्थं पुराविदः ॥
शाखापल्लवसंयुक्ता मन्त्राः स्युरन्यभावकाः ।
वीजं शाखापल्लवौ च मन्त्रे भवति कुत्रचित् ॥
शान्तिः पुष्पं फलञ्चेष्टदर्शनं विनिगद्यते ।
भावप्रधानाः शाखा वै पल्लवाश्चोपवर्णिताः ॥
वीजेषु शक्तिर्निहिता मन्त्रा वीजविवर्जिताः ।
शाखापल्लवयुक्ताश्च भावमुख्या मता इमे ॥
परीक्ष्य शक्तिं प्रकृतिं प्रवृत्तिं साधकस्य वै ।

उपासनाधिकार और चित्तसंवेग की परीक्षा करके मन्त्रउपदेश देने पर अवश्यही साधक को पूर्ण फल की प्राप्ति होती है। उपनिषद्, तन्त्र और मन्त्रशास्त्रों के ज्ञाता योगीही मन्त्र का विस्तारज्ञान करने और यथाधिकार उपदेश देने में समर्थ होते हैं। प्रणव, प्रधानवीज, उपासनावीज, शाखा पल्लवसंयुक्त वीज, वीजरहित शाखा पल्लवयुक्त मन्त्र, इस प्रकार मन्त्र के पांच भेद हैं। साधक की प्रकृति प्रवृत्ति अधिकार की परीक्षा द्वारा यथावत् मन्त्रोपदेश दियाजाता है। मन्त्र की एक विशेष महिमा यह है कि मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग सबमें ही मन्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। उपनिषद् और तन्त्रों की संख्या वहुत होने से मन्त्र भी वहुत हैं॥

उपासनाधिकारश्च दत्तो मन्त्रः शुभावहः॥
तन्त्रमन्त्रोपनिषदां विज्ञाता योगपारगः।
मन्त्रज्ञाने चोपदेशे शक्नोति स महामतिः॥
प्रणवो मुख्यवीजश्चोपासनावीजमेव च।
तद्युक्तं वीतवीजं च मन्त्राः पञ्च प्रकीर्तिताः॥
साधकानां हि प्रकृतिं प्रवृत्तिमनुसृत्य वै।
मन्त्रः समुपदेष्टव्य एष मन्त्रविधिः स्मृतः॥
मन्त्रयोगस्य माहात्म्यमिदमत्रापरं मतम्।
हठे लये तथा राजयोगे सहकरोत्यतः॥
तन्त्रोपनिषदां संख्या यथाऽनन्ता विधीयते।
तथा मन्त्रा ह्यनन्ता वै मुनीनामेष निश्चयः॥

(मन्त्रवीजवर्णन)

(७१) प्रणव सब मन्त्रों का शिरोमणि है, प्रणव मन्त्रों का सेतु है, प्रणव से सब मन्त्र पूर्णशक्ति को प्राप्त होते हैं, प्रणवही शब्दरूप ब्रह्म है। वीजमन्त्र प्रथमतः तीन हैं, और द्वितीयतः वीजमन्त्र आठ हैं। यथा—गुरुवीज, शक्तिवीज, रमावीज, कामवीज, योग-वीज, तेजवीज, शान्तिवीज और रक्षावीज। ये आठ वीज प्रधान हैं। ये सबप्रकार की उपासना में परम सहायक हैं परन्तु इनका रहस्य जानना और इनका यथायोग्य संयोग करना योगचतुष्टय के ज्ञाता योगी-राजही करसक्ते हैं। क् ल् ई और मकार से कामवीज का अनुभव होता है। क् र् ई और मकार से योग-

---

(७१) प्रणवः सर्वमन्त्राणां श्रेष्ठः सेतुनिभः स्मृतः।
मन्त्रशक्तिरनेनैव शब्दब्रह्मात्मकश्च सः॥
वीजमन्त्रास्त्रयः पूर्वं ततोऽष्टौ परिकीर्तिताः।
गुरुवीजं शक्तिवीजं रमावीजं ततो भवेत्॥
कामवीजं योगवीजं तेजोवीजमथापरम्।
शान्तिवीजं च रक्षा च प्रोक्ता चैषां प्रधानता॥
उपासनासु सर्वासु भवन्ति शुभदानि वै।
एषां रहस्यं संयोगो विज्ञेयो योगपारगात्॥
क्लीं कामवीजं निर्दिष्टमीमकारपुरस्कृतौ।
ककारसहितौ रेफमीमकारपुरस्कृतम्॥
योगवीजं वदन्तीदं योगज्ञास्ते पुराविदः।

बीज का अनुभव होता है। आ ए और मकार से गुरु-बीज का अनुभव होता है। हकार रकार ईकार और मकार से शक्तिबीज का अनुभव होता है। शकार रकार ईकार और मकार से रमाबीज का अनुभव होता है। टकार रकार ईकार और मकार से तेजबीज का अनुभव होता है। सकार तकार रकार ईकार और मकार से शान्तिबीज का अनुभव होता है। और हकार लकार ईकार और मकार से रक्षाबीज का अनुभव होता है। जैसे कारणब्रह्म की आठ प्रकृति हैं, जिससे कार्यब्रह्म उत्पन्न हुआ है, वैसेही शब्द-ब्रह्म के ये आठ बीज आठ प्रकृति हैं। येही प्रधानबीज

आएमकारसहितैर्गुरुवीजं प्रकीर्तितम् ॥
हकाररेफसहित ईकारो मधुरस्सरः।
शक्तिवीजं विनिर्दिष्टं रमावीजमिहोच्यते ॥
शकाररेफईकारमकारैः किल जायते।
रेफष्टकारसहित ईकारस्तदनन्तरम् ॥
ततो मकारश्चैवं हि तेजो वीजं विधीयते।
सतौ रकारेकाराभ्यां मकारेण च संयुतौ ॥
शान्तिवीजमिदं प्रोक्तं रक्षावीजमथोच्यते।
लयुतेन हकारेण हीकारमयुतेन च ॥
वीजं रक्षामयं प्रोक्तमृषिभिर्ब्रह्मवादिभिः।
अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ताः कारणब्रह्मणो यथा ॥
याभिराविर्भवन्तीदं कार्यब्रह्मसनातनम्।
तथा प्रधानभूतानि वीजान्यष्टौ मनीषिभिः ॥

कहाते हैं। ये सब प्रकार की उपासना में कल्याणप्रद हैं। तन्त्रान्तर में इनके नामभेद भी पायेजाते हैं।

(मन्त्रोत्पत्तिवर्णन)

(७२) लिङ्गपुराण में मन्त्रोत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है जिसका भावार्थ यह है " प्लुत लक्षण ' ॐ ' नाद का प्रकाश हुआ। लिङ्ग के सर्व्वतः स्थित इस प्रकार के नाद का स्वरूप निम्न लिखित है। उसका आद्य वर्ण अकार है जो कि दक्षिण की ओर स्थित और सूर्यमण्डलवत् दीप्तिमान् है। उत्तर की ओर अग्निप्रभ उकार की स्थिति है और मध्यस्थल में चन्द्रमण्डल की तरह तेजोमय मकार की स्थिति है। इन तीनों के ऊपर शुद्धस्फटिकवद्-भासमान

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ताः कार्य्यरूपस्य ब्रह्मणः।
उपासनासु सर्व्वासु कल्याणाय भवन्ति वै॥

(७२) तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः।
ओमोमिति सुरश्रेष्ठाः ! सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः॥
किमिदन्त्विति संचिन्त्य मया तिष्ठन् महास्वनम्।
लिङ्गस्य दक्षिणे भागे तदाऽपश्यत् सनातनम्॥
आद्यं वर्णमकारन्तु उकारं चोत्तरे ततः।
मकारं मध्यतश्चैव नादाऽन्तं तस्य चोमिति॥
सूर्य्यमण्डलवद्दृष्ट्वा वर्णमाद्यन्तु दक्षिणे।
उत्तरे पावकप्रख्यमुकारं पुरुषर्षभः॥
शीतांशुमण्डलप्रख्यमकारं मध्यमं तथा।

ॐकाररूपी परम पुरुष विराजमान हैं। वे तुरीयातीत, अमृत, निष्फल, निरुपप्लव, निर्द्वन्द्व, केवल, आकाशवत्, बाह्य व अभ्यन्तर में रहते हुए भी उस से निर्लिप्त, आदिमध्यान्तरहित और आनन्द के भी कारण हैं। उनमें तीन मात्रा तीन पादरूप हैं और अर्द्धमात्रा तुरीयपदगम्य ब्रह्मरूप है। ऋक्, यजुः व सामवेद उनके तीन पाद या तीनमात्राएँ हैं। इन वेदों से ही इनके विश्वात्मा रूप की चिन्ता होती है। इन वेदों के प्रकाश के लिये ही ऋषियों की उत्पत्ति है। इसलिये ऋषियों के सारभूत मङ्गलमय वस्तु वेद ही है। इन्हीं ऋषियों के अन्तःकरण में प्रतिफलित ऋचाओं के द्वारा विष्णुजी ने भी परब्रह्म का स्वरूप लाभ किया था।

तस्योपरितदाऽपश्यच्छुद्धस्फटिकवत् प्रभुम् ॥
तुरीयाऽतीतममृतं निष्कलं निरुपप्लवम् ।
निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यं बाह्याऽभ्यन्तरवर्जितम् ॥
सबाह्याऽभ्यन्तरञ्चैव सबाह्याऽभ्यन्तरस्थितम् ।
आदिमध्यान्तरहितमानन्दस्याऽपि कारणम् ॥
मात्रास्तिस्रस्त्वर्द्धमात्रं नादाख्यं ब्रह्मसंज्ञितम् ।
ऋग्यजुःसामवेदा वै मात्रारूपेण माधवः ॥
वेदशब्देभ्य एवेशं विश्वात्मानमचिन्तयत् ।
तदाऽभवदृषिर्वेद ऋषेः सारतमं शुभम् ॥
तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान् परमेश्वरम् ॥
आवयोः स्तुतिसन्तुष्टो लिङ्गे तस्मिन् निरञ्जनः ॥

ॐकाररूपी उस परब्रह्म के विराट्‌रूप से ही समस्त मन्त्रों की उत्पत्ति हुई है। यथा—अकार उनका मस्तक व आकार उनका प्रशस्त ललाट है। इकार उनका दक्षिण नेत्र और ईकार वाम नेत्र है। उकार दक्षिण कर्ण और ऊकार वामकर्ण है। ऋकार दक्षिण कपोल और ॠकार वाम कपोल है। लृ व लॄकार दोनों नासा-पुट हैं। एकार ओष्ठ और ऐकार अधर है। ओ और औकार दो दन्त पंक्ति हैं। अं और अः उनके दो तालु हैं। क से ङ तक पाँच अक्षर उनके दक्षिण पाँच हस्त और च से ञ तक पाँच अक्षर उनके वाम पाँच हस्त हैं। ट से ण तक पाँच अक्षर और त से न तक पाँच

दिव्ये शब्दमये रूपमास्थाय महसन् स्थितः।
अकारस्तस्य मूर्द्धा तु ललाटं दीर्घमुच्यते॥
इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम्।
उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाममुच्यते॥
ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः।
वामं कपोलमृकारो लृलृनासापुटे उभे॥
एकारमोष्ठमूर्द्धश्च ऐकारस्त्वधरो विभोः॥
ओकारश्च तथौकारो दन्तपङ्क्तिद्वयं क्रमात्॥
अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य धीमतः।
काऽऽदिपञ्चाऽक्षराण्यस्य पञ्चहस्तानि दक्षिणे॥
चाऽऽदिपञ्चाऽक्षराण्येवं पञ्चहस्तानि वामतः।
टाऽऽदिपञ्चाऽक्षरं पादस्ताऽऽदिपञ्चाऽक्षरं तथा॥

अक्षर उनके पाद हैं । पकार उनका उदर, फकार दक्षिणपार्श्व, बकार वामपार्श्व, भकार स्कन्ध और मकार हृदय है । यकार से सकार तक ओङ्काररूपी विराट्पुरुष के सप्तधातु हैं, हकार उनका आत्मारूप और क्षकार क्रोधरूप है । भगवान् विष्णु ने उमा के सहित भगवान् महेश्वर के दर्शन करके प्रणाम किया और फिर ऊपर की ओर ओंकारप्रभव कलापञ्चक-संयुक्त मन्त्र के भी दर्शन किये । तदनन्तर वह शुद्ध-स्फटिकसंकाश, मेधाकर, सकलधर्म्म और अर्थसाधक, शुभ, अष्टत्रिंशद्वर्णात्मक सर्व्वविद्यामन्त्ररूप हुआ । वह गायत्री में प्रधान, चतुर्विंशति अक्षरयुक्त, चतुष्कल,

---

पकारमुदरं तस्य फकारः पार्श्व उच्यते ।
बकारो वामपार्श्वं वै भकारं स्कन्धमस्य तत् ॥
मकारं हृदयं शम्भोर्महादेवस्य योगिनः ।
यकारादिसकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः ॥
हकार आत्मरूपं वै क्षकारः क्रोध उच्यते ।
तं दृष्ट्वा उमया सार्द्धं भगवन्तं महेश्वरम् ॥
प्रणम्य भगवान्विष्णुः पुनश्चाऽपश्यदूर्द्ध्वतः ।
ओंकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाऽष्टत्रिंशदक्षरम् ।
मेधाकरमभूद्भूयः सर्व्वधर्म्मार्ऽथसाधकम् ॥
गायत्रीप्रभवं मन्त्रं हरितं वश्यकारकम् ।
चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम् ॥

अनुत्तम, वश्यकारक, हरितवर्ण रुद्रगायत्री मन्त्र है। वह अभिचारक्रिया में अतिशय प्रयोजनीय अष्टकलायुक्त त्रयस्त्रिंशद्वर्णाढ्य कृष्णवर्ण अथर्ववेदोक्त अघोरमन्त्र है। जिसमें पञ्चत्रिंशत् शुभ अक्षर हैं और जो अष्ट-कलायुक्त शान्तिकर और उत्तम श्वेतवर्ण है वह यजु-र्वेदोक्त सद्योजातमन्त्र है। जिसके आदि में जगतीच्छन्द सन्निवेशित है और जो वृद्धि और संहार का कारण और रक्तवर्ण है और जिसमें त्रयोदशकला वर्त्तमान है वही सामवेदोक्त वामदेव मन्त्र है। इस मन्त्रश्रेष्ठ के षडधिकषष्टि वर्ण हैं। भगवान् विष्णु ने इन पांच मन्त्रों को प्राप्त करके जप किया। पश्चात् जो ऋग्यजुः और सामवेद-स्वरूप हैं, जो ईशान हैं, जिनका मुकुट 'ईशान' मन्त्ररूप है, जिनका मुख 'तत्पुरुष'

अथर्वमसितं मन्त्रं कलाऽष्टकसमायुतम्।
आभिचारिकमत्यर्थं त्रयस्त्रिंशच्छुभाऽक्षरम्॥
यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चत्रिंशच्छुभाऽक्षरम्।
कलाऽष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा॥
त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह लोहितम्।
सामोद्भवं जगत्याद्यं वृद्धिसंहारकारणम्॥
वर्णाः षडधिकाः षष्टिरस्य मंत्रवरस्य तु।
पञ्च मन्त्राँस्तथा लब्धा जजाप भगवान् हरिः॥
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम्।
ईशानमीशमुकुटं पुरुषास्यं पुरातनम्॥

मन्त्ररूप है, चतुःषष्टि कला ही जिनकी कान्ति है, जो पुरातन पुरुष हैं, जो करुणहृदय और हृद्य हैं, जो वामगुह्य हैं, जिनके चरण 'सद्योजात' मन्त्ररूप हैं, जो सदाशिव महादेव और भोगीन्द्रभूषण हैं, जिनके चरण और मुख विश्वमय हैं, भगवान् हरि ने, उन ब्रह्मा के भी अधिपति, सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण महादेव शङ्कर के दर्शन करके पुनः इष्ट वाक्यों के द्वारा उन वरद ईश्वरकी स्तुति की।"

(प्रणवप्रशंसा)

(७३) ॐकार का श्रवण ब्रह्मवाक्य-श्रवण के सदृश है, ॐकार का उच्चारण ब्रह्मधाम में जाने के सदृश है, ॐकार का दर्शन स्वरूपदर्शन के सदृश है और ॐकार का चिन्तन ब्रह्मरूपप्राप्ति के सदृश है।

अघोरहृदयं हृद्यं वामगुह्यं सदाशिवम्।
सद्यः पादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम्॥
विश्वतः पादवदनं विश्वतोऽक्षिकरं शिवम्।
ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकारणम्॥
तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्वरदमीश्वरम्॥

(७३) श्रुतं ब्राह्मं वाक्यं श्रुत इह जनैर्यैश्च प्रणवो,
गतं ब्राह्मं धाम प्रणव इह यैः शब्दित इव।
पदं ब्राह्मं दृष्टं नयनपथगो यस्य प्रणवः,
इतं ब्राह्मं रूपं मनसि सततं यस्य प्रणवः॥

शास्त्र व मन्त्रों का प्रणव सेतुरूप है। मन्त्र के पूर्व्व वह न रहने से मंत्र पतित और पीछे न लगाने से मंत्र विशीर्ण हुआ करता है। जैसे विना बन्ध के जल क्षण भर में नीची भूमि को प्राप्त होकर निकल जाताहै उसी प्रकार विना प्रणव अर्थात् ॐकाररहित मन्त्र क्षण भर में जापक को नाश कर देता है। ॐकार मङ्गलकारी, पवित्र, धर्म्मरक्षक और सम्पूर्ण प्रकार की कामनाओं को सिद्ध करनेवाला है। ॐकार परब्रह्मस्वरूप है और सम्पूर्ण मन्त्रों का स्वामी है। जैसे पलाश वृक्ष के पत्तों को एक ही डंठल धारण करता है उसी प्रकार इस सम्पूर्ण जगत् को ॐकार ही धारण कर रहा है। संपूर्ण सिद्धि के अर्थ व वेद और वेदान्त तथा अन्यान्य शास्त्रों में भी निष्ठास्थापन के अर्थ ॐकार का उच्चा-

---

शास्त्राणां प्रणवः सेतुर्मंत्राणां प्रणवः स्मृतः।
स्रवत्यनोङ्कृतः पूर्व्वं परस्ताच्च विशीर्यते॥
निःसेतु सलिलं यद्वत् क्षणान्निम्नं प्रगच्छति।
मंत्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम्।
माङ्गल्यं पावनं धर्म्यं सर्व्वकामप्रसाधनम्।
ओंकारं परमं ब्रह्म सर्व्वमन्त्रेषु नायकम्॥
यथा पर्णं पलाशस्य शंकुनैकेन धार्य्यते।
तथा जगदिदं सर्वमोङ्कारेणैव धार्य्यते॥
सिद्धानां चैव सर्व्वेषां वेदवेदान्तयोस्तथा।
अन्येषामपि शास्त्राणां निष्ठार्थोङ्कार उच्यते॥

रण किया जाता है। आदिमन्त्ररूप प्रणव वेदत्रय द्वारा स्थिर निश्चय किया गया है; सर्व्वमन्त्रों के प्रयोग में "ॐ" इस प्रणव को आदि में संयोजित कियाजाता है। उन सब मन्त्रों की सिद्धि के अर्थ ही ॐकार कहा गया है इससे ॐकार ही सर्वमन्त्रों का अधिपति है इसमें सन्देह नहीं।

(ब्रह्ममन्त्रप्रशंसा)

(७४) सगुण मन्त्र और ब्रह्ममन्त्र के भेद से दो भेद मन्त्र के योगतत्त्वज्ञ महर्षियों ने किये हैं। सगुण मन्त्र द्वारा सविकल्प समाधि और ब्रह्ममन्त्र के द्वारा निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है। ब्रह्ममन्त्र में प्रणवही सर्व्वप्रधान है। और भावमय अन्य

आद्यं मंत्राक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता।
सर्व्वमंत्रप्रयोगेषु ओमित्यादौ प्रयुज्यते॥
तेन सम्परिपूर्णानि यथोक्तानि भवन्ति हि।
सर्वमंत्राऽधियज्ञेन ओंकारेण न संशयः।
तत्तदोङ्कारयुक्तेन मंत्रेण सफलं भवेत्॥
(७४) सगुणो ब्रह्ममन्त्रश्च द्वौ भेदौ समुदीरितौ।
मन्त्रस्य मन्त्रयोगज्ञैर्विद्वद्भिः परमर्षिभिः॥
सगुणेनाऽऽप्यते तूर्णं समाधिः सविकल्पकः।
ब्रह्ममन्त्रेण च तथा निर्विकल्पो हि साधकैः॥
ब्रह्ममन्त्रे हि प्रणवः सर्व्वश्रेष्ठतया मतः।
अन्ये भावमया ब्रह्ममन्त्रा योगविशारदैः॥

ब्रह्ममन्त्रों को महावाक्य भी कहते हैं । महावाक्य चार प्रधान हैं, ये चार वेद के अनुसार निर्णीत हुए हैं । महावाक्य-द्वादशभी प्रधान हैं । और पुनः प्रत्येक शाखा के अनुसार इस कल्प में एक हज़ार एकसौ अस्सी ब्रह्ममन्त्र की संख्या राजयोगियों ने वर्णन की है । गायत्रीमन्त्र इन सब ब्रह्ममन्त्रों से श्रेष्ठ और वह इन संख्याओं से अतिरिक्त है । सब ब्रह्ममन्त्र स्वरूप-द्योतक और आत्मज्ञान-प्रकाशक हैं । केवल राजयोगियोंही के लिये ब्रह्ममन्त्र की विधि है ।

(करमालानिरूपण)

(७५) तर्जनी, मध्यमा, अनामा और कनिष्ठा, इन अंगुलियों पर करमाला की कल्पना करना चाहिये । तर्जनी अनामा और कनिष्ठा के तीन २ पर्व

महावाक्यतया मोक्ताश्चत्वारस्तत्र मुख्यकाः ।
चतुर्वेदानुसारेण चैते निर्णयतां गताः ॥
प्रधानानि भवन्त्येव महावाक्यानि द्वादश ।
वेदशाखाऽनुसारेण महावाक्यप्रधानता ॥
कल्पे सहस्रैकशताऽशीतिमन्त्रा मता इह ।
ब्रह्ममन्त्रेषु मुख्यो हि गायत्रीमन्त्र ईरितः ॥
स्वरूपद्योतका मन्त्राश्चाऽऽत्मज्ञानप्रकाशकाः ।
ब्रह्ममन्त्रो हि विहितः केवलं राजयोगिने ॥

(७५) तर्जनी मध्यमाऽनामा कनिष्ठा चेति ताः क्रमात् ।
तिस्रोऽङ्गुल्यस्त्रिपर्व्वाणो मध्यमा चैकपर्विका ॥

एवं मध्यमांगुलि का एक पर्व धारण करके जप किया जाता है। मध्यमांगुलि के दो पर्व को मेरु बनाना चाहिये। अनामिका अंगुलि के मध्यपर्व से लेकर कनिष्ठाङ्गुलि के क्रम से तर्जनी के मूलदेशपर्य्यन्त इन दश पर्वों में जप किया करे। इस प्रकार शतसंख्या जप करने के बाद आठ बार जप इस प्रकार करे। यथा— अनामिकामूल से प्रारम्भ करके कनिष्ठादि अंगुलि क्रम से तर्जनी अंगुलि के मध्य पर्व्व पर्य्यन्त आठ बार जपकरे। (शक्ति के मन्त्र के जप की विधि यह है) अनामिका कनिष्ठा और मध्यमा अंगुलि के तीन तीन पर्व और तर्जनी का मूल पर्व, इन दश पर्वों में जप करना चाहिये। तर्जनी अंगुलि के अग्रभाग और मध्यभाग में जो साधक जप करता है, सो पापी है। जप करते समय अंगुलियों का परस्पर वियोग न किया

पर्व्वद्वयं मध्यमाया मेरुत्वेनोपकल्पयेत्।
अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठाऽऽदित एव च॥
तर्ज्जनीमूलपर्य्यन्तं दशपर्व्वसु सञ्जपेत्।
अनामामूलमारभ्य कनिष्ठादित एव च॥
तर्ज्जनीमध्यपर्य्यन्तमष्टपर्व्वसु सञ्जपेत्।
अनामिकात्रयं पर्व्व कनिष्ठायास्त्रिपर्व्विका॥
मध्यमायाश्च त्रितयं तर्ज्जनीमूलपर्व्वणि।
तर्ज्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत्॥
अंगुलीर्न वियुञ्जीत किञ्चिदाकुञ्चिते तले।

जाय और एक हाथ आकुञ्चित करके जप करना उचित है। यदि अंगुलियाँ पृथक् पृथक् करके जप किया जाय तो अंगुलियों के छिद्र द्वारा जप का फल बाहर निकलजाता है। विद्वान् साधकों को उचित है कि जप की संख्या अवश्य करें, जो साधक विना संख्या के जप करते हैं, उनके जप का समस्त फल अवश्य विनष्ट होजाता है।

(मालाविचारवर्णन)

(७६) अरिष्टपत्र, बीज, शंख, पद्म, मणि, कुशग्रन्थि एवं रुद्राक्षनिर्मितमाला-समूह उत्तर-उत्तर श्रेष्ठ समझी जाती हैं। प्रवाल, मुक्ता और स्फटिक-निर्मित माला अधिक फलदायी होती है और तुलसी एवं मणि-निर्मित माला अक्षय फल देनेवाली हुआ करती है। हिरण्यगर्भ-मणि की माला में जप-साधन करने से

अंगुलीनां वियोगाच्च छिद्रे च स्रवते जपः ॥
जपसंख्यातु कर्त्तव्या नाऽसंख्यातं जपेत् सुधीः ।
असंख्याया प्रजपतः सर्व्वं भवति निष्फलम् ॥

(७६) अरिष्टपत्रं बीजञ्च शङ्खपद्मौ मणिस्तथा ।
कुशग्रन्थिश्च रुद्राक्ष उत्तमं चोत्तरोत्तरम् ॥
प्रवालमुक्तास्फटिकैर्जपः कोटिफलप्रदः ।
तुलसीमणिभिर्येन गणितं चाऽक्षयं फलम् ॥
हिरण्यगर्भमणिभिर्जप्तं शतगुणं भवेत् ।

शतगुण फल की प्राप्ति हुआ करती है, रुद्राक्षयुक्त इन्द्राक्ष-माला में सहस्रगुण फल की प्राप्ति हुआ करती है। स्फटिक-निर्मित माला से साम्राज्य, पुत्रजीव से श्री, कुशग्रन्थि की माला से आत्मज्ञान की प्राप्ति हुआ करती है और रुद्राक्ष-निर्मित माला द्वारा सर्व कामनाओं की सिद्धि हुआ करती है। प्रवालनिर्मित माला से सर्वतोवशीभूत, आमलकीनिर्मित माला से मोक्ष की प्राप्ति व मुक्तानिर्मित माला से सर्वविद्या की प्राप्ति हुआ करती है; माणिक-रचित मालाद्वारा त्रिलोक की नारी वशीभूत, नीलमरकत-निर्मित द्वारा शत्रुओं को भयप्रदान और सुवर्ण-निर्मित मालाद्वारा महती श्री की प्राप्ति हुआ करती है। रौप्यनिर्मित मालाद्वारा कामिनी की प्राप्ति, पारदनिर्मित मालाद्वारा पूर्व क-

सहस्रगुणमिन्द्राक्षैरुद्राक्षैर्नियुतं भवेत् ॥
साम्राज्यं स्फाटिके स्यात्तु पुत्रजीवे परां श्रियम्।
आत्मज्ञानं कुशग्रन्थौ रुद्राक्षाः सर्व्वकामदाः ॥
प्रवालैश्च कृता माला सर्वलोकवशङ्करी।
मोक्षप्रदा च माला स्यादामलक्याः फलैः कृता ॥
मुक्ताफलैः कृता माला सर्वविद्याप्रदायिनी।
माणिक्यरचिता माला त्रैलोक्यस्त्रीवशंकरी ॥
नीलैर्मरकतैर्वाऽपि कृता शत्रुभयप्रदा।
सुवर्णरचिता माला दद्याद्वै महतीं श्रियम् ॥
तथा रौप्यमयी माला कन्यां यच्छति कामिताम्।
उक्तानां सर्व्वकामानां दायिनी पारदैः कृता ॥

थित सब फलों की प्राप्ति और तुलसीकाष्ठ-निर्मित मालाद्वारा विष्णुभक्ति की प्राप्ति हुआ करती है; परन्तु साधक जिस पदार्थ की माला से जपकार्य्य साधन करे उसी पदार्थ द्वारा जप की संख्या अर्थात् माला जप की संख्या रक्खा करे। रुद्राक्ष-माला की महिमा में अनेक तन्त्रों में अनेक असाधारण विषय वर्णित हैं। रुद्राक्षधारण के विषय में भी अनेक अलौकिक वर्णन पुराण और तंत्रों में पाये जाते हैं। अनेक तंत्रशास्त्रों की सम्मति है कि रुद्राक्षमाला द्वारा सब सम्प्रदायके साधकही विशेष लाभवान् होसक्ते हैं। पञ्चसम्प्रदाय के लिये ही रुद्राक्ष परमहितकर है। जिस प्रकार उपासनाविधि, पूजाविधि आदि श्रीगुरुमुख से प्राप्त होती है वैसेही मालाधारणविधि भी श्रीगुरुमुख से प्राप्त होने योग्य है।

तुलसीरचिता माला विष्णुभक्तिप्रदायिनी।
जपने यादृशी माला संख्यानेऽपि च तादृशी॥
रुद्राक्षमालामाहात्म्यं वहुतन्त्रेष्वनेकशः।
प्रोक्तं तद्धारणे चाऽपि फलं बहुविधं स्मृतम्॥
रुद्राक्षमालया सर्व्वसम्प्रदायस्य साधकः।
परं श्रेयः समाप्नोति तन्त्रेष्वेतन्निरूपितम्॥
पञ्चानां सम्प्रदायानां हितं रुद्राक्षमालया।
यथोपासनपूजाद्या गुरोरेवाऽधिगम्यते।
तथा तद्धारणविधिस्तस्मादेवाऽवगम्यताम्॥

ध्यानवर्णन।

(७७) अध्यात्मभाव से ही मन्त्रयोग के ध्यानों का आविर्भाव हुआ है। गभीर, अतीन्द्रिय, नानावैचित्र्यपूर्ण, परमानन्दमय भावराज्य में भ्रमण करते हुए पंचोपासना के अधिकारानुसार, विभिन्नसाधकों के लिये, विभिन्नप्रकार अध्यात्मभावपुञ्ज के आदर्श पर मन्त्रयोगध्यान विधिवद्ध हुए हैं। आत्मतत्त्ववेत्ता महर्षियों ने मन्त्रयोगियों के कल्याणार्थ, वेद पुराण और तन्त्रों में अनेकरूपोंका वर्णन कियाहै। वे सब ध्यान वहु होनेपर भी पञ्चोपासना के अनुसार पञ्चश्रेणि में विभक्त हैं। सब ध्यानही अध्यात्मभावमय होने के कारण समाधि देनेवाले हैं।

---

(७७) ध्यानं वै मन्त्रयोगस्याऽध्यात्मभावाद्विनिर्गतम्।
परानन्दमये भावेऽतीन्द्रिये च विलक्षणे ॥
भ्रमद्भिः साधकश्रेयो वाञ्छद्भिर्योगवित्तमैः।
उपासनां पञ्चविधां ज्ञात्वा साधकयोग्यताम् ॥
मन्त्रध्यानं हि कथितमध्यात्मस्याऽनुसारतः।
वेदतन्त्रपुराणेषु मन्त्रशास्त्रप्रवर्तकैः ॥
वर्णितं श्रेय इच्छद्भिर्मन्त्रयोगपरस्य वै।
ध्यानानां वै बहुत्वेऽपि तत्प्रोक्तं पञ्चधैव हि ॥
तेषां भावमयत्वेन समाधिरधिगम्यते ॥

(रूपभेदवर्णन)

(७८) मन्त्रयोग-कथित ध्यान भावप्रधान है, कारणब्रह्म और कार्यब्रह्म दोनों भावमय हैं, कार्यब्रह्म तो भावमय हैं ही, परन्तु मनवाणी अगोचर कारण ब्रह्म भी भावगम्य हैं। जिस प्रकार शब्द के साथ मन्त्र का सम्बन्ध है, उसी प्रकार भाव के साथ रूप का सम्बन्ध है। भाव अनन्त हैं, इस कारण मन्त्रयोगोक्त पञ्चोपासना के ध्यान भी अनेक हैं। योग चतुष्टय के ज्ञाता और वेद और तन्त्ररहस्यज्ञ योगिराजों ने ध्यान के प्रधान भेद निम्नलिखित किये हैं। उदय होते हुये अनेक सूर्यों के समान दीप्यमान हैं, शङ्ख, गदा, कमल और चक्र को जो धारण करते हैं,

---

(७८) भावप्रधानं ध्यानं वै मन्त्रयोगे निरूपितम् ।
कारणब्रह्म वै कार्य्यब्रह्म भावमयं विदुः ॥
कार्य्यब्रह्म यथा भावमयं निर्दिश्यते बुधैः ।
भावगम्यं तथा ब्रह्म मनोवाचामगोचरम् ॥
यथा शब्देन संबद्धा मन्त्रा वै परिकीर्त्तिताः ।
तथा भावेन रूपस्य सम्बन्धो विनिगद्यते ॥
मन्त्रयोगोपासनाया ध्यानानि विविधानि वै ।
भावाऽनन्त्यं यतस्तस्माद् व्याहृतानि मनीषिभिः ॥
विजानद्भिर्मन्त्रभेदान् वेदतन्त्रविशारदैः ।
ध्यानानि वर्णितानीत्थं कथ्यन्ते तानि तत्त्वतः ॥
उद्यत्कोटिदिवाकराऽऽभमनिशं शंखं गदां पङ्कजं,

जिन के दोनों पार्श्वों में लक्ष्मी और वसुमती बैठी हुई हैं, जो अङ्गद हार कुण्डल प्रभृति भूषणों से भूषित हैं और पीतवस्त्र धारण किये हैं, जो कौस्तुभमणि से सुशोभित होरहे हैं, जिनमें सकल त्रिलोक स्थित हैं और जिनके वक्षःस्थल में श्रीवत्सचिह्न शोभा देरहा है उनका भजन करताहूं। उत्तमरत्न समूह जिनके मस्तक की शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधर ओष्ठकी कान्ति से शोभित होरहे हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेज से युक्त हैं, जिनके हस्तद्वय कमलसदृश हैं, जो प्रभा के द्वारा स्वर्ण वर्ण हैं, जो ग्रहवृन्द के सहित आकाश-देश में उदय पर्वत पर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त मानवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हर जिसके हृदय स्वरूप हैं,

---

चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम् ।
कोटीराऽङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभो-
द्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिह्नं भजे ॥
भास्वद्रत्नाऽऽढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा
रञ्जितश्चारुकेशो,
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः
स्वर्णवर्णः प्रभाभिः ।
विश्वाऽऽकाशाऽवकाशे ग्रहगणसहितो
भाति यश्चोदयाऽद्रौ,
सर्व्वाऽऽनन्दप्रदाता हरिहरहृदयः
पातु मां विश्वचक्षुः ॥

ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यदेव मेरी रक्षा करें। जो सिंहारूढा है, जिसके शिरोभाग में चन्द्रमा विराजमान है, जो मरकत (पन्ना) के समान हरित वर्ण की है, चारों भुजाओं से शङ्ख, चक्र, धनु और शर धारण किये हुई है, जो तीन नयनों से शोभित है, जो अङ्गद, हार, कङ्कण, काञ्ची, नूपुर इत्यादि भूषणों से भूषित है; ऐसी दुर्गा हमलोगों की दुर्गतिहारिणी हो। जिसकी आकृति खर्व है, शरीर मोटा है, जिसका मुख चन्द्र के सदृश है, जिसका उदर लम्बा है, जो सुन्दर है, जिसके गण्डस्थल से मदधारा प्रवाहित होरही है और उसके गन्ध से लुब्ध मधुपों की मनोहर ध्वनि होरही है और जिसने अपने दन्तों के आघात से शत्रुओं को विदारण करके उनके रुधिर से सिन्दूर शोभा को बनाया है और जो समस्त कर्मों में सिद्धिप्रदान करता है; ऐसे पार्वतीतनय गणेश को

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भुजैः,
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्ची क्वणन्नूपुरा,
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥
खर्व्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरम्,
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरम्,
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कर्मसु॥

नमस्कार है। जो रजत पर्वतके समान शुभ्रवर्ण हैं, जिन के कपालमें चन्द्रमा भूषण बना है, रत्न के भूषणों से जो भूषित हैं, जिनके हस्त में परशु, मृग, वर और अभय स्थित हैं और पद्मासनास्थित हैं, जिनको देवतागण स्तुति करते हैं, व्याघ्रचर्म जिनका वसन है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वीजस्वरूप हैं; ऐसे पञ्चवक्त्र और त्रिनेत्र महादेव का ध्यान नित्य करना चाहिये।

(विशेषरूपभेदवर्णन)

(७९) पञ्च उपासना के अनुसार विष्णु, सूर्य्य, दुर्गा, गणपति और शिव के पांच प्रधान रूप हैं। उन पांचों के अनेक भेद तन्त्र, मन्त्र शास्त्र और पुराणों में पाये जाते हैं। वे सब बहु होने पर भी इन्हीं पांचों के ही अन्तर्गत हैं। यथाधिकार साधक को अपनी शक्ति प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार श्रीगुरुदेवसे रूप

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानम्,
विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

(७९) विष्णोः सूर्यस्य शक्तेश्च गणेशस्य शिवस्य च।
मुख्यानि पञ्च रूपाणि पञ्चोपासनभेदतः॥
तन्त्रेषु मन्त्रशास्त्रेषु पुराणेषु तथैव च।
निर्दिष्टा वहवो भेदास्तेऽत्रैवान्तर्भवन्ति वै॥
साधकस्य हि प्रकृतिं प्रवृत्तिमनुसृत्य च।

का उपदेश प्राप्त होता है। कहीं कहीं तन्त्रों में ऐसी भी आज्ञा है कि जिस साधक का जिस सम्प्रदाय में जन्म हो और जिस साधक का जो कुलदेवता हो उसको उसी देवता का उपदेश देना उचित है। यह आज्ञा युक्तियुक्त है क्योंकि साधक में स्वकुलसम्भूत प्रकृति के आश्रय करने की और पिता से पैतृकगुणावली के प्राप्त करने की सम्भावना रहती है; परन्तु यथाधिकार उपदेश देनाही हितकर होता है। पञ्चउपासना के भेद अनेक होने पर भी तन्त्रोक्त प्रधान भेद कहे जाते हैं। स्वतन्त्र स्वतन्त्र देवता की उपासना पद्धति और विधि के अनुसार उपदेश देने योग्य है। पद्धति व विधि तंत्रों में द्रष्टव्य है। पञ्चोपासना के सहायक

यथाधिकारं रूपस्योपदेशः प्राप्यते गुरोः ॥
यो यस्य सम्प्रदायः स्याद्या च वै कुलदेवता।
तावेव तस्य निर्दिष्टौ तन्त्रेषु परमर्षिभिः ॥
युक्तियुक्तमिदं भाति यतः कुलक्रमागता।
प्रकृतिः पैतृकगुणाः साधकेषु विलोक्यते ॥
परं यथाधिकारं वै ह्युपदेशः शुभावहः।
उपासनाया भेदस्य बहुत्वेऽपि प्रदर्श्यते ॥
भेदस्तन्त्रेषु यो विज्ञैर्वर्णितस्तन्त्रमार्मिकैः।
अनुसृत्योपदेष्टव्यो देवोपासनपद्धतिम् ॥
विधिं चैते च द्रष्टव्ये तन्त्रशास्त्रेषु योगिभिः।
उपासनायाः साहाय्यं करोत्युपनिषत्स्फुटम् ॥

अनेक उपनिषद् हैं, पुराणोक्त पांच गीता पांच उपासना की सहायकहैं और मन्त्रयोगके सब अङ्गोंसे पूर्ण और उपासना पद्धति सहित, वैष्णव सम्प्रदाय के सात रहस्यग्रन्थ, सौर्य्य के दो, शाक्त के चौवीस, शैव के पांच और गाणपत्य के तीन हैं। किसी किसी सिद्धान्त से गणपति के प्रधान रूपभेद दो और किसी किसी मत से तीन माने गये हैं। स्व स्व उपासना में ये सब रहस्यग्रन्थ परम हितकर हैं।

(ध्यानभेदवर्णन)

(८०) मन्त्र और तन्त्रशास्त्र के अनुसार योगियों ने विष्णु की पूजा के विषय में सात प्रकार के ध्यान कहे हैं। भगवती के पूजन में चतुर्विंशति प्रकार के

पुराणकथिताः पञ्च गीताश्चापि सहायिकाः।
मन्त्रयोगाङ्गपूर्णाश्च पद्धत्या सहिताश्च वै॥
रहस्यग्रन्थाः सप्त स्युर्वैष्णवे सम्प्रदायके।
सौर्य्ये द्वौ शक्तिपूजायां चतुर्विंशति कल्पिताः॥
शैवे पञ्च त्रयः प्रोक्ता गाणपत्ये प्रधानतः।
गणेशस्य च प्राधान्याद्रूपभेदो द्विधा मतः॥
क्वचिच्च त्रिविधः प्रोक्तो मताः श्रेयस्करा इमे।

(८०) मन्त्रयोगानुसारेण तन्त्रशास्त्रविधानतः।
ध्यानं सप्तविधं ख्यातं विष्णुदेवस्य पूजने॥
चतुर्विंशतिरूपञ्च ध्यानं वै शक्तिदैवतम्।

रूप और ध्यान की कल्पना है। महादेव की उपासना में पांच प्रकार का ध्यान माना गया है। सूर्य और गणेश की पूजा में दो प्रकार के ध्यान माने गये हैं। अपने अपने इष्टदेव के रूप को मन से जानने को ध्यान कहते हैं। ध्यानही मनुष्य का बन्ध और मोक्ष का कारण है। जैसे जैसे मनुष्य आत्मध्यान करता है, वैसेही उसको समाधि की प्राप्ति होती है। आत्मा केवल ध्यानही के द्वारा वशीभूत होता है और दूसरा उपाय उसके वश करने का नहीं है। इस प्रकार जिस मनुष्य की आत्मा जहां प्रसक्त होती है, वहीं उसे समाधि प्राप्त होती है। नदी का जल जिस प्रकार समुद्र में जाने से समुद्रजल से अभिन्न होता है अर्थात् उसकी उस समय स्वतन्त्रता नहीं रहती है; उसी

शङ्करोपासनायाञ्च ध्यानं पञ्चविधं मतम् ॥
श्रीसूर्य्यस्य समर्चायां तथा गणपतेः पुनः।
उपासनासु कथिते ध्याने द्वे रूपकल्पिते ॥
ध्यानमिष्टस्वरूपस्य वेदनं मनसा खलु।
ध्यानमेव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥
ध्यायेद्यथा यथात्मानं तत्समाधिस्तथा तथा।
ध्यात्वैवात्मनि संस्थाप्यो नान्यथात्मा वशो भवेत् ॥
एवमेव हि सर्व्वत्र यत्प्रसक्तस्तु यो नरः।
तथात्मा सोऽपि तत्रैव समाधिं समवाप्नुयात् ॥
अभिन्नतां यथा गच्छेन्नद्यम्बु जलधिस्थितम्।

प्रकार मनुष्य की आत्मा तद्भाव प्राप्त करके अभिन्न होजाती है।

अथ समाधिवर्णन।

(८१) जिस प्रकार लययोग की समाधि को महालय और हठयोग की समाधि को महाबोध कहते हैं उसी प्रकार मन्त्रयोग की समाधि को महाभाव कहते हैं। जबतक त्रिपुटी रहती है तबतक ध्यानाधिकार रहता है, त्रिपुटी के लय होजाने से महाभाव का उदय होता है। मन्त्रसिद्धि के साथही साथ देवता में मन का लय होकर त्रिपुटी नाश होनेपर योगी को समाधि की प्राप्ति होती है। प्रथम मन, मन्त्र और देवता का स्वतन्त्र बोध रहता है परन्तु ये तीनों

तथात्माऽभिन्न एवात्र तद्भावं समवाप्नुयात् ॥

(८१) समाधिर्लययोगस्य महालय इतीरितः।
हठस्य च महाबोधो यथा योगपरायणैः ॥
तथैव मन्त्रयोगस्य महाभावः प्रकीर्तितः।
ध्यानाधिकारः सम्प्रोक्तो यावद्वै त्रिपुटीस्थितिः ॥
विलीनायाञ्च तस्यां वै महाभावसमुद्भवः।
मन्त्रसिद्ध्या देवतायां विधाय मनसो लयम् ॥
त्रिपुटीनाशतो योगी समाधिमधिगच्छति।
मनो मन्त्रस्तथा देवो ज्ञायते प्रथमं पृथक् ॥
ततः परस्परं तत्तज्ज्ञाने लीनं प्रजायते।

बोध एक दूसरे में लय होते हुए ध्याता ध्यान ध्येय-रूपी त्रिपुटी लय होजाती है। इसी अवस्था में आनन्दाश्रु और रोमाञ्च आदि लक्षणों का विकाश होता है। क्रमशः मन लय होकर समाधि का उदय होता है। समाधिप्राप्ति द्वारा साधक कृतकृत्य होजाता है। महाभावप्राप्ति ही मन्त्रयोग का चरम लक्ष्य है।

(मनोविज्ञानवर्णन)

(८२) पञ्चभूत को धारण करनेवाला मन अध्यात्म है, सङ्कल्प अधिभूत है और चन्द्रमा अधिदैव है। मन, महान्, मति, ब्रह्मा, पूः, बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, संवित्, चिति, स्मृति ये मन के पर्याय-

---

ध्येयध्यातृध्यानरूपत्रिपुटी विलयो भवेत् ॥
इमामवस्थां संप्राप्य साधकेषु प्रजायते ।
रोमोद्गमः स्तब्धता च तथाऽऽनन्दाश्रुवर्षणम् ॥
क्रमेण च मनोलीने समाधिः किल जायते ।
समाधिना भवन्त्याशु कृतकृत्या हि साधकाः ॥
महाभावोपलब्धिर्हि मन्त्रयोगेऽन्तिमं फलम् ।

(८२) अध्यात्मं मन इत्याहुः पञ्चभूतात्मधारकम् ।
अधिभूतञ्च संकल्पश्चन्द्रमाश्चाधिदैवतम् ॥
मनो महान् मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ।
प्रज्ञा संवित् चितिश्चैव स्मृतिश्च परिपठ्यते ॥

वाचक शब्द हैं। आस्तिक्य, बाँटकर खाना, अनुताप, सत्य वचन, मेधा, बुद्धि, धृति, क्षमा, दया, ज्ञान, दम्भ नहीं करना, अनिन्दितकर्म, निःस्पृहता, विनय और धर्म ये गुण सात्त्विक मन के ज्ञानियों ने कहे हैं। क्रोध, ताडनकरने में अभिरुचि, बहुत दुःख, अधिक सुखकी इच्छा, दम्भ, कामुकता, असत्यवचन, अधीरता, अहङ्कार, धन से अभिमान, अधिक आनन्द, अधिक घूमना ये सब गुण राजसिक मन के हैं। नास्तिकता, विषाद, बहुत आलस्य, दुष्टमति, भय, निन्दित कर्म, अच्छे कामों में सदा आलस्य, अज्ञान,

---

पर्य्यायवाचकाः शब्दा मनसः परिकीर्तिताः ।
आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुतापश्च तथ्यं वचो,
मेधाबुद्धिधृतिक्षमाश्च करुणा ज्ञानं च निर्दम्भता ।
कर्म्माऽनिन्दितमस्पृहा च विनयो धर्म्मे सदैवादरः,
एते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीता गुणा ज्ञानिभिः ॥
क्रोधस्ताडनशीलता च बहुलं दुःखं सुखेच्छाऽधिका,
दम्भः कामुकताऽप्यलीकवचनं चाधीरताऽहङ्कृतिः ।
ऐश्वर्य्यादभिमानिताऽतिशयिताऽऽनन्दोऽधिकश्चाटनं,
प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥
नास्तिक्यं सुविषण्णताऽतिशयिताऽलस्यं च दुष्टा मतिः,
भीतिर्निन्दितकर्म्म शर्म्मणि सदा निद्रालुताऽहर्निशम् ।
अज्ञानं किल सर्व्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता,

अधिक क्रोध, मूर्खता, ये सब गुण तामसिक मन के हैं। साधकों का सत्त्वप्रधान मन अतिहितकारक है, क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य परमानन्द प्राप्त करसक्ता है। मन की वृत्तियां पांच हैं, यह पूज्यपाद महर्षि पतञ्जलि का मत है। यथा—क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ, एकाग्र और निरुद्ध। पांचवीं वृत्ति की प्राप्ति अति दुर्लभ है। एकाग्रता वृत्ति की सहायता से साधक उस पांचवीं वृत्ति को प्राप्त करता है। मनही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण है। जब वह विषयों से युक्त होता है तब बन्ध का कारण होता है, परन्तु जब वही निर्विषय होता है तब साधक मोक्षलाभ करता है।

प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥
साधकानां मनः सत्त्वप्रधानं हितकारकम्।
तद्द्वारैव परानन्दं लभन्ते साधका जनाः ॥
वृत्तयः पञ्च मनसः पतञ्जलिमुनेर्मताः।
क्षिप्ता तथा च विक्षिप्ता मूढा चैकाग्रता ततः ॥
निरुद्धा पञ्चमी बोध्या यस्याः प्राप्तिः सुदुर्लभा।
एकाग्रतासहायेनाऽऽप्नुयात्तां साधकोत्तमः ॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धस्य विषयासङ्गि मुक्तेर्निर्विषयं तथा ॥

मनमें स्थित मनस्थ और मनवर्जित ऐसे मनको मन के द्वारा योगीगण देखकर सिद्धि लाभ करते हैं। इसप्रकार मन संयम करके यतचित्त योगी संसाररूपी समुद्र को पार करके परमपद को प्राप्त करलेते हैं॥

इसप्रकार श्रीमन्त्रयोगसंहितानामक तन्त्र का भाषानुवाद समाप्त हुआ।

मनःस्थं मनमध्यस्थं मध्यस्थं मनवर्जितम्।
मनसा मनमालोक्य स्वयं सिध्यन्ति योगिनः॥
इत्थं मनः सुसंयम्य योगिनो यतमानसाः।
भवाम्भोधिं समुत्तीर्य यान्ति धाम परात्परम्॥

इति श्रीमन्त्रयोगसंहितानामकं तन्त्रं समाप्तम्॥

विज्ञापन ।

—:०:—

श्रीभारतधर्ममहामण्डल के शास्त्रप्रकाश विभाग द्वारा शास्त्रीय ग्रन्थ प्रकाशित करने का विराट् आयोजन किया गया है। बिना उपयुक्त शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रकाश के और बिना हिन्दी भाषा की पुष्टि के हिन्दू जाति का कल्याण होना असम्भव है।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल के व्यवस्थापक श्री १०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज-की सहायता से काशी के प्रसिद्ध विद्वानों के द्वारा सम्पादित होकर प्रामाणिक सुबोध और सुहृदयरूप से यह ग्रन्थमाला निकलेगी। इन ग्रन्थों में से कुछ ग्रन्थ छपकर प्रकाशित होचुके हैं जिनकी नामावली नीचे दी जाती है। इनके अतिरिक्त सांख्यदर्शन, कर्ममीमांसादर्शन, दैवीमीमांसादर्शन, योगदर्शन आदि के भाष्य, हठयोगसंहिता, लययोगसंहिता, राजयोगसंहिता आदि ग्रन्थ बनचुके हैं और उनमें से कई ग्रन्थ छप रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर एक ऐसा अपूर्व हिन्दीभाष्य छप रहा है कि जिस प्रकार का गीताभाष्य आज तक किसी भाषा में भी प्रकाशित नहीं हुई है।

सदाचारसोपान। यह पुस्तक कोमलमति बालक—बालिकाओं की धर्म्मशिक्षा के लिये प्रथम पुस्तक है। कई भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और सारे भारत-वर्ष में इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गई है। इसकी चार आवृत्तियां छप चुकी हैं। अपने बच्चों की धर्म्मशिक्षा के लिये इस पुस्तक को हर एक हिन्दू को मंगवाना चाहिये। मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान। कोमलमति कन्याओं के धर्म्मशिक्षा के लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। इस पुस्तक की बहुत कुछ प्रशंसा हुई है। हिन्दूमात्र को अपनी अपनी कन्याओं को धर्म्मशिक्षा देने के लिये यह पुस्तक मंगवाना चाहिये। मूल्य -) एक आना।

धर्म्मसोपान। यह धर्म्मशिक्षाविषयक बड़ी पुस्तक है। बालकों को इससे धर्म्म का साधारण ज्ञान भली भांति हो जाता है। यह पुस्तक क्या बालक क्या वृद्ध स्त्री पुरुष सबके लिये बहुतही उपकारी है। धर्म्मशिक्षा पाने की इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तक को मंगावें। मूल्य ।) चार आना।

ब्रह्मचर्य्याश्रम। ब्रह्मचर्य्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुतही उपयोगी है। सब ब्रह्मचर्याश्रम, पाठशाला और स्कूलों में इस ग्रन्थकी पढ़ाई होनी चाहिये। मूल्य ।) चार आना।

राजशिक्षासोपान। राजा महाराजा और उनके कुमारों को धर्म्मशिक्षा देने के लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है परन्तु सर्वसाधारण की धर्म्मशिक्षा के लिये भी यह ग्रन्थ बहुतही उपयोगी है। इसमें सनातनधर्म्म के अङ्ग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य ≡) तीन आना।

साधनसोपान। यह पुस्तक उपासना और साधनशैली की शिक्षा प्राप्त करने में बहुतही उपयोगी है। बालक बालिकाओं को पहलेही से इस पुस्तक को पढ़ाना

चाहिये। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि बालक और वृद्ध समानरूप से इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ करसक्ते हैं। मूल्य ≈) दो आना।

शास्त्रसोपान। सनातनधर्म्म के शास्त्रों का संक्षेप सारांश इस ग्रन्थ में वर्णित है। सब शास्त्रों का विवरण कुछ समझने के लिये प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बी के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। मूल्य ।) चार आना।

धर्म्मप्रचारसोपान। यह ग्रन्थ धर्मोपदेश देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितों के लिये बहुतही हितकारी है। मूल्य≈) तीन आना।

उपरिलिखित सब ग्रन्थ धर्म्मशिक्षाविषयक हैं। इस कारण स्कूल कालेज व पाठशालाओं को इकट्ठे लेने पर कुछ सुविधा से मिल सकेंगे और पुस्तक विक्रेताओं को इन पर योग्य कमीशन दिया जायगा।

उपदेशपारिजात। यह संस्कृतगद्यात्मक अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें सनातनधर्म्म क्या है, धर्म्मोपदेशक किसको कहते हैं, सनातनधर्म्म के सब शास्त्रों में क्या क्या विषय है, धर्म्मवक्ता होने के लिये किन किन योग्यताओं के होने की आवश्यकता है इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थ में संस्कृतविद्वान्मात्र को पढ़ना उचित है और धर्म्मवक्ता, धर्म्मोपदेशक, पौराणिक, पण्डित आदि के लिये तो यह ग्रन्थ सब समय साथ रखने योग्य है। मूल्य ॥) आठ आना।

इस संस्कृतग्रन्थ के अतिरिक्त संस्कृतभाषा में योगदर्शन, सांख्यदर्शन, दैवीमीमांसा-दर्शन आदि दर्शनों का भाष्य, मन्त्रयोगसंहिता, हठयोगसंहिता, लययोगसंहिता, राजयोगसंहिता, हरिहरब्रह्मसामरस्य, योगप्रवेशिका, धर्म्मसुधाकर, श्रीमधुसूदनसंहिता आदि ग्रन्थ छप रहे हैं और शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले हैं।

कल्किपुराण। कल्किपुराण का नाम किसने नहीं सुना है। वर्तमान समय के लिये यह बहुतही हितकारी ग्रन्थ है, विशुद्ध हिन्दीअनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। धर्म्मजिज्ञासुमात्र को इस ग्रन्थ को पढ़ना उचित है। मूल्य १) एक रुपया।

योगदर्शन। हिन्दीभाष्य सहित। इस प्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। जिल्दसहित मूल्य २॥) विना जिल्द मूल्य २) दो रुपया।

नवीनदृष्टि में प्रवीण भारत। भारत के प्राचीन गौरव और आर्य्यजाति का महत्त्व जानने के लिये यह एकही पुस्तक है। सजिल्द मूल्य १॥) विनाजिल्द मूल्य १) एक रुपया।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलरहस्य। इस ग्रन्थरत्न में सात अध्याय हैं। यथा—आर्य्यजातिकी दशाका परिवर्तन, चिन्ताका कारण, व्याधिनिर्णय, औषधि-प्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञसाधन। यह ग्रन्थरत्न हिन्दूजातिकी उन्नतिविषय का असाधारण ग्रन्थ है। प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बी को इस ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये। द्वितीयावृत्ति छप चुकी है, इसमें बहुतसा विषय बढ़ाया गया है। इस ग्रन्थ का आदर सारे भारतवर्षमें समानरूप से हुआ है। कई भाषाओं में यह ग्रन्थ अनुवादित हुआ है। धर्म्म के गूढ़ तत्त्व भी इसमें बहुत अच्छी तरह से बताये गये हैं। मूल्य १) एक रुपया।

निगमागमचन्द्रिका । प्रथम और द्वितीय भाग की दो पुस्तकें धर्म्मानुरागी सज्जनों को मिलसक्ती हैं ।

प्रत्येक का सजिल्द मूल्य १॥) बिना जिल्द मूल्य १) एक रुपया ।

पहलेके पांच साल के पांच भागों में सनातनधर्म्म के अनेक गूढ़ रहस्यसम्बन्धीय ऐसे २ प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं कि आजतक वैसे धर्म्मसम्बन्धीय प्रबन्ध और कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए हैं । जो सनातनधर्मके अनेक रहस्य जानकर तृप्त होना चाहैं वे इन पुस्तकों को मंगावें । मूल्य पांचों भागों का २॥) रुपया ।

भक्तिदर्शन । श्रीशाण्डिल्यसूत्रों पर बहुत विस्तृत हिन्दी भाष्यसहित और एक अति विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रणीत हुआ है । हिन्दी का यह एक असाधारण ग्रन्थ है । इस प्रकार का भक्तिसम्बन्धीय ग्रन्थ हिन्दी में पहले प्रकाशित नहीं हुआ था । भगवद्भक्ति के विस्तारित रहस्यों का ज्ञान इस ग्रन्थ के पाठ करने से होता है । भक्तिशास्त्र के समझने की इच्छा रखनेवाले और श्रीभगवान् में भक्ति करनेवाले धार्म्मिकमात्र को इस ग्रन्थ को पढ़ना उचित है । मूल्य १) एक रुपया ।

गीतावली । इसको पढ़ने से सङ्गीतशास्त्र का मर्म्म थोड़े में ही समझ में आसकेगा और इसमें अनेक अच्छे अच्छे भजनों का भी संग्रह है । सङ्गीतानुरागी और भजनानुरागियोंको अवश्य इसको लेना चाहिये । मूल्य ।।) आठ आना ।

गुरुगीता । इस प्रकार की गुरुगीता आजतक किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुई है । इसमें गुरुशिष्यलक्षण, उपासनाका रहस्य और भेद, मन्त्र हठ लय व राजयोगों का लक्षण और अङ्ग एवं गुरुमाहात्म्य, शिष्यकर्त्तव्य, परमतत्त्व का स्वरूप और गुरुशब्दार्थ आदि सब विषय स्पष्टरूप से हैं । मूल और स्पष्ट सरल व सुमधुर भाषानुवाद सहित यह ग्रन्थ छपा है । गुरु व शिष्य दोनों का उपकारी यह ग्रन्थ है ।

मूल्य=) दो आनामात्र ।

श्रीसत्यार्थविवेक । हिन्दूधर्म्म का अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है । हिन्दूजाति की पुनरुन्नति के लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयों की जरूरत है उन में से सबसे बड़ी भारी जरूरत एक ऐसे धर्म्मग्रन्थ की थी कि जिसके अध्ययन अध्यापन द्वारा सनातनधर्म्म का रहस्य और उसका विस्तारित स्वरूप तथा उसके सब अङ्ग उपाङ्गों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होसके और साथही साथ वेद और सब शास्त्रों का आशय और वेद और सब शास्त्रों में कहे हुए विज्ञानों का यथाक्रम स्वरूप जिज्ञासु को भली भांति विदित हो, इसी गुरुतर अभाव के दूर करने के अर्थ भारत के प्रसिद्ध धर्म्मवक्ता और श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल के उपदेशक महाविद्यालय के दर्शनशास्त्र के अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी ने इस ग्रन्थ को प्रणयन करना प्रारम्भ किया है । इसमें वर्त्तमान समय के आलोच्य सभी विषय विस्तारितरूप से दिये जायँगे । पञ्चमहायज्ञ का विज्ञान, वेद की अपौरुषेयता तथा मन्त्र ब्राह्मण और उपनिषद् का पूर्ण रहस्य, पुराण के आख्यानों का गूढ़विज्ञान, दर्शनों का संक्षेप रहस्य, वर्णाश्रम-धर्म्म का पूरा तत्त्व, आर्य्यजाति में पातिव्रत्यधर्म्म की पूर्ण महिमा का रहस्य, उपा-

सना का पूर्ण विज्ञान, सगुण निर्गुण अवतार आदि उपासना का तत्त्व, मन्त्रयोग हठयोग लययोग राजयोग का विज्ञान और अङ्ग, आर्य्यजाति व समाज की उन्नति का उपाय, पितृपूजा श्राद्ध परलोक आदि का रहस्य, षोडश संस्कार का विज्ञान, सृष्टि स्थिति प्रलय और मुक्ति का तत्त्व, जीव ब्रह्म ईश्वर का स्वरूप, जीवन्मुक्ति और संन्यास का तत्त्व, प्रवृत्ति निवृत्ति तत्त्व, सदाचार महिमा, पुरुषशिक्षा और स्त्री-शिक्षा, सम्प्रदाय पन्थ और उपधर्म्मसमीक्षा, संन्यासी के साथ जगत्सेवा का सम्बन्ध इत्यादि सभी विषय पूर्ण वर्णन किये जायँगे जिससे आजकल के अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्म्मग्रन्थों और धर्म्मप्रचार के द्वारा जो हानि होरही है वह सब दूर होकर यथार्थरूप से सनातन वैदिकधर्म्म का प्रचार होगा। इस ग्रन्थरत्न में साम्प्रदायिक पक्षपात का लेशमात्र नहीं रहा है और निष्पक्षरूप से सब विषय प्रतिपादन किये गये हैं जिससे सकल प्रकार के अधिकारी कल्याण प्राप्त करसकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि हिन्दूशास्त्र के सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाण और युक्ति के सिवाय आजकल की सायन्सविद्या के द्वारा भी प्रतिपादन किये गये हैं। जिससे आजकल के नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठासकें। इसकी भाषा सरल मधुर और गम्भीर है। यह ग्रन्थ चौंसठ अध्याय और आठ समुल्लासों में पूर्ण होगा और यह बृहत् ग्रन्थ जो रायल साइज के दो हजार पृष्ठ से अधिक होगा, तीन खण्ड में प्रकाशित होगा। इसका प्रथम खण्ड प्रकाशित होचुका है। इस खण्ड का रायल एडीशन जो बहुत बढ़िया कागज पर छपा है और सुन्दर जिल्द बँधी हुई है उसका मूल्य ४) चार रुपया है और सर्व्वसाधारण के उपयोगी अच्छे और सस्ते कागज़ पर साधारण एडीशन का मूल्य १॥) डेढ़ रुपया है।

निम्नलिखित हिन्दी पुस्तकें यन्त्रस्थ हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता सभाष्य। दैवीमीमांसादर्शन सभाष्य। धर्म्मसङ्गीत। श्रीसत्यार्थ-विवेक द्वितीय व तृतीय खण्ड।

पुस्तक मिलने के पतेः—

(१) श्रीमान् बाबू मनोहरलाल साहब भार्गव बी. ए.,
सुपरिण्टेण्डेण्ट नवलकिशोर प्रेस लखनऊ

(२) मैनेजर निगमागम बुकडिपो,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
हरिधाम जगत्गंज, बनारस (छावनी).

(३) श्रीमान् बाबू मुरारिलालजी,
सेक्रेटरी पञ्जाब धर्म्ममण्डल
फ़ीरोज़पुर (शहर) पञ्जाब

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल
और
उपदेशकमहाविद्यालय।

सनातनधर्म के अभ्युदय और सद्विद्याविस्तार के लिये समग्र हिन्दू जाति की अद्वितीय विराट् धर्मसभा श्रीभारतधर्ममहामण्डल है। धर्म्माचार्य्य, स्वाधीन नरपति, राजा महाराजा, जमींदार, सेठ साहूकार, अध्यापक ब्राह्मण, सर्व्वसाधारण हिन्दू प्रजा, गृहस्थ स्त्री पुरुष और साधु संन्यासी अर्थात् सब हिन्दूमात्र इस विराट् धर्मसभा के सब श्रेणी के सभ्य हैं और हो सके हैं। हिन्दूमात्र को इस स्वजातीय महासभा का सभ्य होना उचित है।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशी में साधु और गृहस्थ धर्म्मवक्ता प्रस्तुत करने के अर्थ श्रीमहामण्डल उपदेशक महाविद्यालयनामक विद्यालय स्थापन हुआ है। जो साधुगण दार्शनिक और धर्मसम्बन्धीय ज्ञान लाभ करके अपने साधु जीवन को कृतकृत्य करना चाहें और जो गृहस्थ विद्वान् धार्मिक शिक्षा लाभ करके धर्म्मप्रचार द्वारा देश की सेवा करते हुए अपना जीवन निर्व्वाह करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

प्रधानाध्यक्ष—

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
हरिधाम जगत्गंज, बनारस (छावनी).

श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभाण्डार।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशी में दीन दुःखियों के क्लेशनिवारणार्थ यह सभा स्थापित की गई है। इस सभा के द्वारा अतिविस्तृत रीति पर शास्त्रप्रकाश का कार्य्य प्रारम्भ किया गया है। इस सभा द्वारा धर्मपुस्तिका पुस्तकादि यथासम्भव रीति पर बिना मूल्य वितरण करने का भी विचार रक्खा गया है। दानभाण्डार के द्वारा तत्त्वबोध, साधुओं का कर्त्तव्य, धर्म्म और धर्म्माङ्ग, दानधर्म्म, महामण्डल की आवश्यकता आदि कई एक हिन्दी भाषा के धर्म्मग्रन्थ और अङ्गरेजी भाषा के कई एक ट्रेक्ट बिना मूल्य योग्यपात्रों को बांटे जाते हैं। पत्राचार करने पर विदित हो सकेगा। शास्त्रप्रकाश की आमदनी इसी दानभाण्डार में दीन दुःखियों के दुःखमोचनार्थ व्यय की जाती है। इस सभा में जो दान करना चाहें या किसी प्रकार का पत्राचार करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

सेक्रेटरी—

श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभाण्डार,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
हरिधाम जगतगंज,
बनारस (छावनी).

हिन्दीरत्नाकर ।

हिन्दीरत्नाकर में कौन कौन अमूल्य ग्रन्थ प्रारम्भ में निकलेंगे उनकी सूचना हिन्दीरत्नाकर की प्रस्तावना में की गई है जो मँगाने पर भेजी जा सकती है । उक्त ग्रन्थों में से जो जो ग्रन्थ छपकर पूर्ण होजायँगे उनके स्थान पर अन्य ऐसे ही बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित होने के लिये चुने जायँगे । इस समय प्रथम भाग में श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दीभाष्य सहित, मन्त्रयोगसंहिता भाषानुवाद सहित और दैवीमीमांसा (मध्यमीमांसा) हिन्दीभाष्य सहित यही तीन ग्रन्थ प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है ।

हिन्दीभाषा की पुष्टि, अध्यात्मज्ञान का विस्तार और सनातनधर्म्मशास्त्रों के प्रचार के अभिप्राय से हिन्दीरत्नाकर प्रकाशित हो रहा है । अभी त्रैमासिकरूप से प्रकाशित होता है । क्रमशः यह ग्रन्थावली मासिक पुस्तकरूप से प्रकाशित होगी । मूल्य वार्षिक १) एक रुपयामात्र है । सन् १९१४ का प्रथम भाग प्रस्तुत है । आगे नियमितरूप से निकलेगा ।

मिलने का पताः—
मैनेजर निगमागम बुकडिपो,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
हरिधाम जगत्गंज,
बनारस (छावनी).

श्रीसत्यार्थविवेक

का

द्वितीय और तृतीय खण्ड ।

इस ग्रन्थरत्न के शेष दो खण्ड छप रहे हैं । जो सज्जन प्रथम खण्ड खरीदेंगे, उन को शेष दो खण्ड भी खरीदना उचित है । उक्त दोनों खण्डों में क्या क्या विषय होंगे सो ऊपर के पृष्ठों में द्रष्टव्य है । अस्तु, शेष दोनों खण्डों में सनातन-धर्म्म के विषय में आजकल के आलोच्य सब विषय होंगे । जो उक्त शेष दो खण्ड खरीदना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजकर अपना नाम दर्जरजिस्टर करायें ।

मैनेजर —
निगमागम बुकडिपो,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
जगत्गंज, बनारस.

विद्यारत्नाकर ।
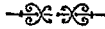
दर्शनशास्त्र, योगशास्त्र आदि के अपूर्व्व ग्रन्थ विद्यारत्नाकर नामक संस्कृत मासिक ग्रन्थावली में प्रकाशित होते हैं । आजकल के देशकाल-उपयोगी सब दर्शनों पर संस्कृत भाष्य और लुप्तप्राय कतिपय दर्शनशास्त्र और अन्यान्य अनेक अप्रकाशित अपूर्व्व संस्कृतग्रन्थ इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित होते हैं ।

मासिक पत्र मिलने का पता:—
मैनेजर—
निगमागम बुकडिपो,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
जगतगंज, बनारस.

धर्म्मतत्त्वजिज्ञासा सभा ।
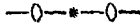
The Aryan Bureau of Seers and Savants.

इस नाम से श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय की साधुमण्डली द्वारा एक सभा श्रीमहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशी में स्थापित हुई है जिस सभा में पृथिवीभर के सब जाति के और सब धर्म्मावलम्बी विद्वान् और जिज्ञासुगण पत्राचार द्वारा सनातन धर्म्म और उसके वैज्ञानिक और सामाजिक रहस्यों के विषय में ज्ञान-लाभ कर सक्ते हैं । इसके सभ्य होने के लिये कोई चन्दा नहीं लिया जाता है । इस सभा के प्रबन्ध से श्रीमहामण्डल प्रधान कार्य्यालय में समय समय पर अधिवेशन होकर प्रत्यक्षरूप से भी शास्त्रार्थ निर्णय हुआ करता है ।

पत्र भेजने का पता:—
HONORARY SECRETARY,
The Aryan Bureau of Seers and Savants,
Mahamandal House, Jagatgunj,
Benares.

निगमागम बुकडिपो ।

यह पुस्तकालय श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशी के श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णादानभण्डार के द्वारा स्थापित हुआ है। इस बुकडिपो के स्थापन करने के निम्नलिखित उद्देश्य हैं।

(क) हिन्दूजाति के धर्म्मकेन्द्र और महातीर्थ श्रीकाशीपुरी में एक स्वजातीय बुकडिपो क़ायम करना।

(ख) इस पुस्तकालय को शनैः शनैः ऐसा बना देना कि जिससे हिन्दूजाति की सब भाषाओं के धर्मग्रन्थ इसी एक स्थान में आसानी और स्वल्प मूल्य से मिल सकें।

(ग) यह पुस्तकालय अपना सम्बन्ध किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के साथ न रक्खे. हिन्दूधर्म्म की उन्नति ही इसका लक्ष्य हो और इसका लाभांश शास्त्रप्रचारार्थ और दीन दुःखियों के दुःखनिवारणार्थ व्यय हो।

(घ) यह हिन्दूजाति का एक जातीय पुस्तकभाण्डार समझा जाय।

मैनेजर—
निगमागम बुकडिपो,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
महामण्डलभवन, जगत्गंज, बनारस.

विशेष सूचना ।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल का सन् १९१४ ईस्वी तक का इतिहास ग्रन्थ अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित हो चुका है और उसका हिन्दी अनुवाद हिन्दी भाषाज्ञ मैम्बरों के लिये हो रहा है जो शीघ्र प्रकाशित होगा। इस स्वजातीय महासभा के विस्तारित इतिहास को जो सज्जन लेना चाहें निम्नलिखित पते पर लिखें।

मैनेजर—
निगमागम बुकडिपो,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
महामण्डलभवन, जगत्गंज, बनारस.